दक्ष–सुता

(महाकाव्य)

महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया



कलासन प्रकाशन

कल्याणी भवन बीकानेर (राज)

समर्पण -

दक्ष-सुता की विमल कथा है-
उनको प्रिय कल्याणी,
जिनके मन मन्दिर में रहते-
सब दिन शिवा-भवानी,
ताप मिटेगा इससे भू का-
धरती शीतल होगी,
कलुष मिटेगा, शुभ भावना-
मन की निर्मल होगी!!

माणकचन्द रामपुरिया

ISBN 81 86842 26 8

© महोपाध्याय माणकचन्द रामपुरिया

सस्करण प्रथम 1998

प्रकाशन कलासन प्रकाशन
बीकानेर (राज)

लेजर प्रिट श्री करणी कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स
बीकानेर (राज)

मुद्रक कल्याणी प्रिन्टर्स
माल गोदाम रोड बीकानेर

मूल्य 150 रुपये

Daksha-Suta
(EPIC) by Mahopadhaya Manakchand Rampuria
Page 164 Price 150/

प्राक्कथन
मानवीय मूल्यों की महागाथा

दक्षसुता' के सर्जक की दृष्टि पुराणों में वर्णित कथा को ज्यों का त्यों लेने की बजाय दाक्षायणी के चरित्र को उजागर करने पर केन्द्रित रही है। अत उसने 'दक्षसुता के कथानक में उसके जन्म से पूर्व दक्ष द्वारा जगदबा के आह्वान की आराधना और पुत्री रूप में उन्हें प्राप्त करने की लालसा आदि घटनाओं को छोड़कर महाकाव्य का प्रारभ सती के पूर्वराग से ही किया है।

नायिका प्रधान काव्य होने के कारण महाकाव्यकार का पूरा ध्यान सती के व्यक्तित्व के सभी पक्षों को पूरी सवेदना के साथ प्रस्तुत करने पर केन्द्रित रहा है लेकिन सती के साथ शिव का प्रसग भी ताने-बाने की भाँति गुँथा होने के कारण शिव का व्यक्तित्व भी निरूपित हुआ है।

महाकाव्य की परपरा नायक से सम्बद्ध हो, उसमें प्रकृति वर्णन वैविध्य तथा विविध परिस्थितियों में मानव-जीवन के उत्कर्ष की काव्यात्मक प्रस्तुति हो- इस दृष्टि से 'दक्षसुता' का रचनाकार जागरुक है। उसने सस्कृत काव्यों की परपरा का सर्वथा निर्वहन किया है।

महाकाव्यकार को कथानक में प्रसगानुकूल मोड़ देने की स्वतत्रता होती है पर उससे मूल कथा के साथ कतिपय प्रसगों एव पात्रों की सृष्टि करने की सस्कृत काव्यों में परपरा रही है तदनुसार हिन्दी के महाकाव्यों में भी अनेक स्थलों पर रचनाकारों की मौलिक उद्‌भावनाएँ सामने आती रही है। इस दृष्टि से देखें तो दक्षसुता में प्रारभिक प्रसग पर्याप्त नवीन काव्यात्मक तथा प्रासगिक बन पड़ा है।

पूरे कथानक को तीन बड़े भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में सती का पूर्व राग है शिव को प्राप्त करने की चाह है, पिता की आनाकानी के बावजूद माता की सहायता से तथा पितामह की आज्ञा से शिव सती से विवाह करते हैं। विवाह के पूर्व तक का प्रसग एक भाग है। दूसरे भाग में राम का वन-गमन, शिव का प्रणाम और सती के मन का सदेह सती द्वारा राम की परीक्षा भ्रमजाल छाँटना शिव द्वारा पूछ-परछ सती का नकार और शिव द्वारा ध्यानयोग से सम्पूर्ण घटना के अवलोकन के पश्चात् यह निश्चय कि

अब वे आगे से सती से प्रीति नहीं रख सकेंगे। यहाँ तक दूसरा भाग है। तीसरे भाग में दक्ष-यज्ञ का प्रसग और सती द्वारा आत्मदाह, प्राणोत्सर्ग, शिव का उसके शव का लिये-लिये घूमना और अर्द्धनारीश्वर की स्थिति का प्रसग सम्मिलित है।

कथा वर्णनात्मक शैली में आगे बढ़ती है। वर्णन जीवत है, वातावरण की निर्मिति में सहायक प्रभात रात्रि नदी-पहाड़, नगर वनाचल राजप्रासाद यज्ञशाला आदि के वर्णन चित्ताकर्षक है। प्राकृतिक वैभव को चित्रित करने तथा रागात्मकता की गध बिखेरने मे कवि सिद्धहस्त है। कैलाश के मनोरम वातावरण में वह शिव-सती का मिलन कैसी नाट्यात्मकता से करता है

औढर शकर बोले- बाले! तुम हो कौन बताओ?
क्यों आई कैलाश शिखर पर परिचय नहीं छिपाओ।।
कन्या बोली- दक्षसुता हूँ नाम सती है मेरा।
उत्तर के आलोक नगर में हम सबका है डेरा।।

शिव के अनुराग में खोयी सती की मनःस्थिति का वर्णन देखिये

सम्पुट कर में पुष्पहार औ थे उन्मीलित लोचन।
बिठा चुकी थी अपने हिय के पिय को मन के आगन।।
भाव-भरी अनभिज्ञ जगत से अपने में थी खोयी।
दक्षसुता के दृग में जाने कितनी रातें रोयी।।

शिव के स्वरूप और उनकी जीवन-शैली का वर्णन कवि स्वय भी कर सकता था पर यह काम वह दक्ष के मुँह से कराता है ताकि दो जीवन शैलियों का अतर उजागर हो जाए। वैभव-सम्पन्न व्यक्ति वैभवहीन को जिस कटुता से देखता है, वह कटुता दक्ष के मन में विद्यमान है। सामान्य व्यक्ति जिस सर्वहारा स्वरूप को अपना इष्ट व अभीष्ट मानकर चलता है दक्ष उसी को अपने लिए हेय मानता है।

कहाँ दक्ष का नगर कि जैसे फूलों की हो माला?
और कहाँ यह शशिधर निर्धन भाग-धतूरे वाला।।
हम विमान पर चलते, वह तो बसहा पर है चलता।
भूत-प्रेत के सग सदा ही रहता क्रीड़ा करता।।
रहने का है गेह न कोई पर्वत पर ही रह कर।
जान बचाता किसी तरह हिम-आतप-वर्षा सहकर।।
मृगछाला औ चिताभस्म है उसकी सम्पति सारी।
डिम-डिम डमरू करता जैसे कोई रहे मदारी।।

सार्पों के आभूषण पहने, सिर पर धर कर गगा।
चाहे कोई कुछ भी कह ले, वह है बिल्कुल नगा।।

गूढ मनोभावों को अभिव्यक्ति देने में कवि जितना पटु है उतना ही दार्शनिक विषयों को सहज बातचीत की शैली में प्रस्तुति देने में माहिर है। शिव और सती वस्तुत प्रकृति-पुरुष हैं जिनकी वेदों-उपनिषदों-पुराणों में महिमा गाई गई है। यहाँ कवि ने दक्षराज को नारदजी के मुँह से समझाते हुए किस सहजता से यह निरुपण किया है

आप जानते सृष्टि सदा ही युग्म भाव से चलती है।
प्रकृति-पुरुष जब मिलते जग में कर्म भावना जगती है।।
बिना एक के जग-प्रपच यह कभी नहीं चल जाएगा।
साधक का सब कर्म जगत में स्वय विफल हो जाएगा।।
जड़-चेतन औ' निखिल चराचर इससे ही परिचालित हैं।
दो तत्वों से ही निर्मित यह भुवन भास्कर-भावित है।।
परम पुरुष है एक दूसरी परम तापसी नारी है।
शकर उसके प्यारे हैं, वह शकरजी की प्यारी है।।

कई बार परिस्थितियों की सकुलता से छन-निथर कर कुछ बातें सूत्र के रूप में स्वत निकल आती हैं। महाकाव्य में स्थान-स्थान पर ऐसे सूत्रों को देखा जा सकता है

नियति कठिन है बात नहीं जो प्रज्ञा की सुन सकते हैं।
निश्चय उनकी दुर्गति होती जीवन भर पछ्ताते हैं।।

शिव के रौद्र रूप को जिस लाघवता से चित्रित किया गया है निश्चय ही पाठकों के लिए वह बड़ा विरल अनुभव होगा

दायाँ पग उठ गया अचानक एक पाँव पर खड़े रहे।
नजर उठा कर देख गगन को शिलाखड से अड़े रहे।।
डमरू लेकर हाथ उठाया गूँज उठा स्वर डिम-डिम-डिम।
ऐसा नाद उठा अबर तक हुई चादनी भी मद्धम।।
स्वर पर स्वर जो उठे गगन में घिरे स्वरों के चद्रायन।
लगा कि जैसे खुला अचानक नए लोक का वातायन।।
चद्रकेतु की ताल-ताल पर हवा थिरकती आती थी।
शैल-शिखर भी झूम उठे चट्टान पिघलती जाती थी।।
नाच उठे ये हिम के कण-कण, पूरा भूधर डोल उठा।
महा प्रलय की भाषा मानो दिग्-दिगत था बोल उठा।।

कवि की कथा के मार्मिक अशों पर भी पैनी नजर है और पात्रों के चरित्राकन पर भी। शिव तो लोक मगल की प्रतिमूर्ति हैं। समाज में पारस्परिक सद्भाव एव ऐक्य के लिए वे विश्वास को आधारभूत मूल्य मानते हैं। दक्ष अहकारी, निरकुश व शिवद्रोही है जबकि सती शिव की काम्या है। उसके प्रेम में उत्कृष्टता है, पर वह हृदय से कम बुद्धि से अधिक काम लेती है। किसी भी बात में सहज विश्वास कर लेना उसे नहीं भाता।

कवि मानो पाठकों को सकेत देता है कि श्रद्धा होगी तो शिव को प्राप्त कर लोगे और अगर अविश्वास होगा तो पाकर भी खो दोगे। आज के हमारे जीवन में इन्हीं मूल्यों का अभाव है। शायद इसी लिए हम उस शिवत्व को नहीं पा रहे, जो हम सभी का अभीष्ट है।

कवि का शब्द-चयन भावानुरूप सटीक है। बड़ी ही सहजता से वह वर्णन और विवेचन करने में सफल रहा है। काव्य में सहज ही अनेक अलकार स्वत आते हैं। ज्यादातर तो उत्प्रेक्षा उपमा अपह्नुति, रूपक आदि अलकार ही प्रयुक्त हुए हैं पर शब्दालकार अनेक स्थानों पर काव्य-चमत्कार में सहायक बने हैं। वैसे तो सभी रसों की उपस्थिति है, पर प्रधानता शात रस की है।

भारत के जन-जन के जीवन से जुड़ी इस कथा पर इतनी उत्तम कृति के सृजन के लिए कवि को कोटिश धन्यवाद।

सैंट्रल जेल के सामने
बीकानेर-334005

रामनरेश सोनी

अपनी ओर से

दक्ष-सुता का जीवन एक ऐसा ध्रुवतारा है कि इसके तेजोदीप्त आलोक में युग-युग तक सत्यान्वेषकों को प्रकाश मिलता रहेगा। प्राचीन देवी-देवताओं की गाथाओं में, प्राय आधुनिक जीवन का सूत्र ऐसा विलुप्त रहता है कि बहुतों का विश्वास नहीं जमता। इसके विपरीत आज के परिप्रेक्ष्य में दक्ष-सुता का जीवन बड़ा ज्वलन्त है।

सती ऐसे पिता की दुलारी कन्या थी, जो मिथ्या अहकार में अपने पिता ब्रह्मा की भी अवहेलना करते रहे अपनी अर्धांगिनी की एक न सुनी। महादेव से सदा द्रोह किया। अन्तत इन सबका प्रतिफल उनकी दुहिता ने शिरोधार्य कर स्वय को योगाग्नि का ग्रास बनाया। प्रस्तुत रचना कैलाश की उस अमर विभूति की अविस्मरणीय गाथा है, जो विश्वनायक होते हुए भी नटराज बना और उसकी प्रिया ने चराचर में प्रेरणा का जो मत्र फूँका, वह आज भी गूँज रहा है। शरीर त्याग कर पुन अधूरा कार्य सम्पन्न करने के लिए उस ममतामयी माँ ने पार्वती के रूप में जन्म लिया। इस प्रकार दुखान्त से सुखान्त में लाकर भारतीय जीवन-सस्कृति के जिस अमर सन्देश को इतिहास-पुरुष के समक्ष प्रस्तुत किया गया है वही आज के झझावात में पथ-प्रदर्शन के काम आए यही इस रचना का लक्ष्य है।

साथ ही, भारतीय नारी के त्याग-तप का जाज्वल्यमान दृष्टात इस कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। विश्वास है सुविज्ञ-सहृदय समुदाय काव्य-रस का पान करके चिन्मयता का अनुभव करेंगे।

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शकराचार्य ज्योतिष् एव द्वारका शारदापीठधीश्वर स्वामी 1008 श्री स्वरूपानन्द जी महाराज ने आशीर्वाद के प्रसाद स्वरूप इस पुस्तक पर जो अपना मन्तव्य प्रदान किया है उसके लिए आभारी हूँ और वरेण्य विद्वान कवि बन्धु श्री रामनरेशजी सोनी ने मानवीय मूल्यों की महागाथा शीर्षक से एव सहपाठी कवि कुल कमल दिवाकर भाई श्री लक्ष्मीनारायणजी रगा ने जो विद्वतापूर्ण अभिमत दिया उसके लिए उन्हें कोटिश धन्यवाद। इति।

माणकचन्द रामपुरिया

सम्प्रति

"दक्ष-सुता" महोपाध्याय श्री माणकचन्द रामपुरिया की पच्चीस सर्गो में लिखी भाव प्रवण काव्य कृति है। कथानक अव्यन्त्ति सक्षिप्त है। दक्ष प्रजापति की पुत्री सती अकिचन शिव से विवाह करना चाहती है। दक्ष शिव को सती के अनुरूप वर नहीं समझते और विवाह सम्बन्ध की अनुमति नहीं देते, किन्तु सती अपने को सर्वदा शकर प्रिया मानती है और अपनी माँ स्वीकृति दे देती हैं। तब शकर और सती गन्धर्व लोक में जाकर गार्न्धर्व विवाह कर लेते हैं। बाद में शिव और सती के अगस्त्त आश्रम में जाने और सती को राम के विषय में मोह होने-राम की परीक्षा लेने आदि के बाद शिव का सती को त्याग ने का सकल्प करने एव दक्षा यज्ञ में शिव का मात्र नहीं देखने से सती का योगाग्नि में अपने को भष्म करने प्रसग है। सती ही पार्वती रूप में शिव को पुल प्राप्त होती हैं। स्पष्ट है कि कथानक में पौराणिक दृष्टि नहीं-कवि कीअपनी कल्पना जनित सृष्टि है किन्तु भाव भाषा एव चित्रण मन को छूते हैं। प्रकृतिवर्णन भी प्रभावशाली है। कवि ने अपनी रचना को महाकाव्य कहा है। महाकाव्य की शास्त्रीय परिभाषा में तो यह नहीं आता पर-वर्तमान काव्य धारा में इसे इस रूप में गिना जा सकता है। श्री रामपुरिया जी का सती के चरित्र का आश्रय लेकर किया गया यह प्रयास सहृदयों को अवश्य ही परितोष देगा। पूज्य महाराज श्री के शुभाशीर्वाद सहित।

ब्रह्मचारी सुबुद्धानन्द
सचिव
श्री जगदगुरू शकराचार्य जी महाराज
ज्योतिष्पीठ/द्वारका



अनन्त श्री विभूषित जगदगुरु शकराचार्य ज्योतिष एव द्वारका शारदा पीठाधीश्वर स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी सरस्वती महाराज सा को अपनी कृतियाँ भेट करते हुए माणकचन्द रामपुरिया एव श्रीमती सुधा रामपुरिया

प्रथम सर्ग

धवल शिखर हिम गिरि का पावन-
मनहर शौभाशाली,
छटा यहाँ है उषा किरण की-
दीप्ति बढ़ाने वाली,

गगन-विचुम्बित श्रृंग सलोने-
रूप मनोहर धरते,
पिघल-पिघल कर झरते हिमकण-
किलकारी हैं भरते,

प्रथम किरण दिनमणि की आकर-
इसको रोज जगाती,
तरुण-अरुण अरुणाई खिलकर-
इसका रूप सजाती,

चम-चम अम्बर चमक उठा है-
इसे चूमकर क्षणभर,
झूम रहा है पवन इसी का-
मधुर स्नेह पा कणभर,

निकल रही हैं नदियाँ निर्मल-
मन में मोद मनाती,
तुहिन-जाल से बचकर चलती-
अपना रूप बचाती,

पग-पग हैं हिमखण्ड बड़े ही-
अल्हड़ औ मस्ताने,
शान्त भाव से नहीं किसी को-
देते हैं ये जाने,

जो भी निकली रूप सजाए–
बाधा उसे सताती,
जो भी लेती टक्कर उसकी–
धार बदल ही जाती,

देख रहे थे दाँव लगाए–
अपनी दीठ नजर से,
निकल रही है चार सलोनी–
कौन कहाँ किस घर से,

जो भी आती, आलिंगन में–
उसे तुरत भर लेते,
घर्षण के संघर्ष बाद ही–
उसको जाने देते,

थिरक-थिरक कर पवन यहाँ पर–
अतुलित मोद मनाता,
उसको कोई नहीं टोकता–
निर्बाध चला ही जाता,

चुचुक निहार कणों को छूता–
सत्कर जब मलियानिल,
कोई मादक सिहरन से तब–
घुल जाता है अनमिल,

कभी कहीं पर रग-विरगे-
पक्षी शोर मचाते,
लगता, विरही किसी यक्ष का-
ये सदेश सुनाते,

शान्त प्रकृति है यहाँ सभी कुछ-
शीतल-शीतल लगता,
किसी तरह का ताप यहाँ पर-
नहीं कभी है जगता,

दिन में कोई नहीं उपद्रव-
रजनी हृदय रमाती,
छोड़ चाँद को, नहीं दूसरी-
सूरत है दिख पाती,

नभ में चाँद सलोना खिलता-
हवा झूलने लगती,
मलयज के हर तार-तार पर-
नयी रागिनी जगती,

दिन में चाँदी रजनी सोना-
इस धरती की खूबी,
मधुर स्नेह में हृदय-भावना-
सबकी रहती डूबी,

ऋषि-मुनियों का आश्रय है यह-
नवल-धवल अनुरंजित,
यहाँ शान्त सन्नाटे में भी-
परम राग है गुंजित,

यहीं शिखर पर शान्त-भाव से-
शंकर जी हैं रहते,
भूत-प्रेत औ बसहा से ही-
प्रतिदिन क्रीड़ा करते,

आज इसी कैलाश शिखर पर-
राग अनोखा जागा,
डिम-डिम डमरू गूँजा सहसा-
बसहा सुनकर भागा,

भूत-प्रेत सब देख रहे थे-
छटा निखरती न्यारी,
विहँस रहा था चन्द्र भाल का-
ऐसी थी तैयारी,

महादेव अब नृत्य करेंगे-
सुनी सभी ने वाणी,
बहुत दिनों पर आज जगी थी-
नयी चाह कल्याणी।

द्वितीय सर्ग

शुभ्र कान्तिमय जगी धरित्री-

सुघर अधर मुस्काया,

आज यहाँ कैलाश शिखर पर-

नव प्रकाश था छाया,

लगता, सब कुछ नवल-धवल था-
खिली नयी उजियाली,
उतर रही थी छवि अम्बर से-
कोई सुषमाशाली,

कण-कण तक अब विहँस उठा था-
घिरी तनिक अरुणाई,
लगता कोई मादकता थी-
शैल-शिखर तक छाई,

नदी सलोनी थमी हुई थी-
प्रकृति शान्त थी लगती,
कोई हलचल कहीं न दिखती-
कोई शिखा न जगती,

नदियों के जल जमकर ऊपर-
पत्थर से थे छाए,
त्रिर्यक-से हिम-खण्ड स्वय ही-
समतल तल बन आए,

मलय पवन भी रुका हुआ था-
मन-ही-मन अकुलाता,
एक अजब सन्नाटे जैसा-
मन में था उफनाता,

आज वहाँ कैलाश शिखर पर-
जाने क्या हो आया,
एक अजब खामोशी का ही-
नया रूप था छाया,

वीरभद्र शिव के ही गण थे-
बसहा को बतलाते,
रहे सबेरे से ही शितिगल-
भाँग-धतूरा खाते,

लगता, उनके मन में कोई-
नूतन बात जगी है,
आज हिमानी के अन्तर में-
कोई आग लगी है,

औढर मन से शान्त सदा ही-
रहते ध्यान लगाए,
ऐसे में भी उनके मन में-
क्षोभ कहाँ से आए,

बड़ा विकट सकट दिखता है-
क्षण-क्षण मन घबड़ाता,
लगता, कोई राग अनोखा-
आज कहीं से आता,

आज शान्त कैलाश शिखर भी-
रह-रह डोल रहा है,
लगता कुछ उन्मत्त राग में-
कोई बोल रहा है,

इतने में ही शिव-शकर ने-
डमरू तनिक बजाया,
दूर-दूर तक उसके स्वर का-
तार-तार लहराया,

लगा कि जैसे एक मोहनी-
मूर्त्ति धरा पर छाई,
शिखर-शिखर की हिम-चट्टानें-
क्षणभर को मुस्काई,

भूतनाथ का डमरू गूँजा-
कण-कण था लहराता,
मादक स्वर की नयी प्रभा से-
शिखर-शिखर टकराता,

दक्ष-लोक की कोई कन्या-
सहसा सम्मुख आई,
बोली-तुम ने मेरे उर में-
अग्नि मधुर सुलगाई,

जनम-जनम से यही राग में-
हरदम सुनती आती,
बहुत चाह कर भी मैं इसको-
भूल नहीं हूँ पाती,

खूब याद है पूर्व जन्म में-
डमरू यही बजा था,
उस सवत्सर में भी मेरा-
जीवन सजा-धजा था,

लगता मेरा इस डमरू से-
है सम्बन्ध पुराना,
इसीलिए, सच कहती, मुझको-
यहाँ पड़ा है आना,

औढर शकर बोले-वाले।
तुम हो कौन बताओ,
क्यों आई कैलाश शिखर पर-
परिचय नहीं छिपाओ ?

कन्या बोली-दक्ष सुता हूँ-
नाम सती है मेरा
उत्तरके आलोक नगर में-
हम सब का है डेरा

किन्तु यहाँ इस पर्वत पर है-
सब कुछ लगता परिचित,
मेरे हित अपनत्व भरा है-
यहाँ श्रृंग पर समुचित,

सच कहती हूँ,यह बसहा है-
मेरा जाना-माना,
इस कैलाश शिखर का कण-कण-
लगता है पहचाना,

लेकिन प्रभुवर। दया करें यह-
डमरू नहीं बजाएँ
विकल प्राण हो जाते इतने-
कैसे क्या बतलाएँ,

इतना कह कर सती वहाँ से-
भाग गयी निज घर को,
रहे देखते, मन में हँसते-
शिव कैलाश शिखर को।

तृतीय सर्ग

पुण्यवती धरती पर छाई-
नयी विभा मतवाली,
उतरी आज गगन से सुषमा-
मन को हरने वाली

डाल-डाल पर कलियाँ चटखीं-
नव सौरभ लहराया,
पुष्पावलियों पर अनजाने-
भौंरों का दल आया,

कोयल कूक उठी, अवनी की-
विहँस उठी अमराई,
लता विटप से लगी लिपटने-
रस बेबस सरसाई,

कुञ्ज-कुञ्ज में हवा हठीली-
मादकताा फैलाती,
उघर रही डाली को नूतन-
किशुक चीर पिन्हाती,

सरसों के खिलते फूलों पर-
तितली-दल मँड़राते,
कली-कली को मधुप मनोहर-
गुन-गुन गीत सुनाते,

अमरलोक-सा दक्ष-नगर था-
मोहक रस से गीला,
यहाँ उषा थी शीतल लहरी-
चदा सदा पनीला,

बड़ी अचम्भित थी, यह कैसे-
जीवित चित्र हुआ है?
जनम-जनम का यह पहचाना-
कैसा मित्र हुआ है?

अनजाने ही चित्र बना था-
रूप मगर था शिव का,
मन में शुभ्र प्रकाश जगा था-
किसी सलोने दिव का,

सती चित्र के आगे अब तो-
प्रतिदिन शीश नवाती,
और पुन कैलाश पहुँचकर-
प्रभु पर पुष्प चढाती,

यही नियम था, दक्ष-सुता नित-
करती जिसका पालन,
मन-से हर पल शकर जी का-
करती थी आराधन।

कदम-कदम पर यहाँ सुवासित-
फूलों की थी क्यारी,
इन्हें चूमकर मादक दृग भी-
होते थे बलिहारी,

नन्दन वन-सा उपवन सुन्दर-
मोहक और निराला,
सदा राग से रहता गुंजित-
दीप्ति ,

दक्षराज की कन्या निर्मल-
स्नेह-शिखा-सी जगती,
फूलों की आभा में लगती-
नयी विभा-सी सजती,

खेल रही

मन में कोई रूप सलोना
स्वप्न-सरीखा जगता,
उसकी ही मधु प्रीति अनामय
में रहता मन पगता,

लगती जैसे जनम-जनम की-
यह हो प्रीति पुरानी,
और इसी अपरूप रूप के-
आगे बनी दिवानी,

उसने एक शिला-पट लेकर-
उस पर चित्र उतारा,
लगा कि कोई जाना-माना-
उभरा रूप सँवारा,

सपने में जिसको देखा था-
उसको अपने रचकर
न्यौछावर थी सती कुमारी-
उसी मूर्त्ति के ऊपर,

पत्थर पर अंकित उस छवि पर-
स्वत सती थी मोहित,
लगा कि इससे जनम-जनम का-
नाता है चिर-परिचित,

बिल्व-वृक्ष के नीचे उसको-
रखकर तुलसी-तट पर,
रोज सवेरे लगी पूजने-
पूरा ध्यान लगाकर,

कदम-कदम पर यहाँ सुवासित-
फूलों की थी क्यारी,
इन्हें चूमकर मादक दृग भी-
होते थे बलिहारी,

नन्दन वन-सा उपवन सुन्दर-
मोहक और निराला,
सदा राग से रहता गुंजित-
दीप्ति जगाने वाला,

दक्षराज की कन्या निर्मल-
स्नेह-शिखा-सी जगती,
फूलों की आभा में लगती-
नयी विभा-सी सजती,

खेल रही थी फूल-फूल से-
डाली नयी सजाकर
झूम रही थी अपने मन से
मन का गीत सुनाकर,

मन में कोई रूप सलोना-
स्वप्न-सरीखा जगता,
उसकी ही मधु प्रीति अनामय-
में रहता मन पगता

लगती जैसे जनम-जनम की-
यह हो प्रीति पुरानी,
और इसी अपरूप रूप के-
आगे बनी दिवानी,

उसने एक शिला-पट लेकर-
उस पर चित्र उतारा,
लगा कि कोई जाना-माना-
उभरा रूप सँवारा,

सपने में जिसको देखा था-
उसको अपने रचकर
न्यौछावर थी सती कुमारी-
उसी मूर्त्ति के ऊपर,

पत्थर पर अंकित उस छवि पर-
स्वत सती थी मोहित,
लगा कि इससे जनम-जनम का-
नाता है चिर-परिचित,

बिल्व-वृक्ष के नीचे उसको-
रखकर तुलसी-तट पर,
रोज सबेरे लगी पूजने-
पूरा ध्यान लगाकर,

उसको ही सर्वस्व मानकर-
करती थी नित पूजन,
इससे ही मिलता था उसको-
जनम-जनम का दर्शन,

आज सवेरे पूजा में वह-
लीन हुई थी जैसे,
डमरू के स्वन श्रवण रन्ध्र में-
हुए निनादित वैसे,

सुनते ही हिमगिरि पर दौड़ी-
अपनी सुध-बुध खोकर
महादेव को रही देखती-
सपनों से दृग धोकर,

पत्थर पर भी वही चित्र था-
वही रूप अलबेला
इसी रूप के साथ जगा था-
मन में प्रेम अकेला,

इसी चित्र को सम्मुख रखकर-
अपना शीश नवाती,
अब तो प्रतिदिन इसी चित्र के-
आगे रोती-गाती,

बड़ी अचम्भित थी, यह कैसे-
जीवित चित्र हुआ है?
जनम-जनम का यह पहचाना-
कैसा मित्र हुआ है?

अनजाने ही चित्र बना था-
रूप मगर था शिव का,
मन में शुभ्र प्रकाश जगा था-
किसी सलोने दिव का,

सती चित्र के आगे अब तो-
प्रतिदिन शीश नवाती,
और पुन कैलाश पहुँचकर-
प्रभु पर पुष्प चढाती,

यही नियम था, दक्ष-सुता नित-
करती जिसका पालन,
मन-से हर पल शकर जी का-
करती थी आराधन।

चतुर्थ सर्ग

दक्ष-नगर में बड़ी शान्ति थी-
सब थे सुखी हृदय से,
विचलित कभी न होते कोई-
किसी तरह के भय से

डाल-डाल पर फूल खिले थे-
पक्षी चह-चह करते,
खग-मृग भी सब साथ विचरते-
नहीं किसी से डरते,

हृदय-हृदय में शुभ विचार ही-
रहते थे नित जगते,
मधुर-स्नेह के भावों में ही-
जन-मन रहते पगते,

दक्षराज के घर में जब से-
सुता सती थी आई,
सुख-सौभाग्य-विभव-समृद्धि-
अधिक-अधिक अधिकाई,

सब रहते आनंदित घर में-
कोई कमी नहीं थी,
लगता जैसे, इष्ट देव की-
पूरी कृपा वहीं थी,

जो भी जो इच्छा थे करते-
सद्य ही मिल जाते,
मन चाहे फल-फूल वृन्त पर-
अपने ही खिल जाते,

अन्तर मन से सब जन करते-
ब्रह्मा का आराधन,
याग-यज्ञ औं ताप-तपस्या-
के होते आयोजन,

एक दिवस राजर्षि महामुनि-
नारद वहाँ पधारे,
विनत भाव से जन-परिजन ने-
उनके पाँव पखारे,

श्रद्धा-पूर्वक दक्ष राज ने-
आदर-दान दिया था,
मन्त्रि-सहित दक्षाणी ने भी-
सब सम्मान कियाा था,

साथ सुता को ले दक्षाणी-
नारद जी से बोली,
आप त्रिकालदर्शी है ऋषिवर-
देखें कन्या भोली

इसे देख बतलाएँ, कैसा-
इसका भाग्य-विभव है?
जरा बताएँ इसका कैसा-
फलदायक उद्भव है?

हस्त रेख पढ़कर तब नारद-
बोले-यह है न्यारी,
यह कन्या है इस धरती पर-
सब से ही अधिकारी,

इसके कारण तुम सब का भी-
भू पर मान बढ़ेगा,
परम तापसी के कारण यह-
भूतल भी यश लेगा,

अचल सदा अहिवात जगत में-
होगा इस कन्या का,
पतिव्रताओं में यश निर्मल-
होगा इस धन्या का,

लेकिन इसका कंत बनेगा-
कोई शिखर-बिहारी,
रहित-पिता-माता से कोई-
पूर्ण पुरुष अवतारी,

इतना कह कर दक्ष-नगर से-
निकले नारद तत्क्षण,
ब्रह्मलोक में आए कहते-
नारायण-नारायण।

नारद सुन वचन-भविष्यत्
दक्षाणी घबडायी,
तरह-तरह की नयी भावना-
उसके हृदय समायी,

रही सोचती कौन मिलेगा?
कहाँ रहेगी जाकर?
रहित पिता-माता से कैसा-
होगा पुरुष धरा पर?

कुछ भी समझ न पाई, मथती-
रही हृदय दक्षाणी,
सती सुअगी, मृदुल लोचना-
कैसी है कल्याणी।

और कत इसका है कोई-
पर्वत का अधिवासी,
जाने कैसे निभ पाएगा-
बाला सग सन्यासी,

आज स्वय थे दक्षराज भी-
चिन्तातुर अति व्याकुल
तरह-तरह की चिन्ता मन को-
कर जाती थी आकुल

जैसे–जैसे सती बालिका–
वय में बढ़ती आई,
दक्षराज के मन में भी तब–
चिन्ता घनी समाई,

चिन्ता यही पिता की,कन्या–
अच्छे घर में जाए,
कीर्ति बढ़ाने वाला उसको–
योग्य पुरुष अपनाए, –

राजा हो या रंक–हृदय–वो
एक सभी का रहता,
एक तरह की मर्म–वेदना–
हर प्राणी है सहता,

कोई मिलता महा घमण्डी–
कोई अत्याचारी,
ऐसे वर के साथ बाँध दूँ–
कैसे कन्या प्यारी ?

दक्षराज थे चिन्तित, वह वर–
कहाँ सुयोग्य मिलेगा ?
सती सलोनी मेरी कन्या–
जो स्वीकार करेगा,

इसी तरह दिन रहे बीतते-
राह नहीं मिल पाती,
किन्तु हृदय में सती सदा ही-
रहती थी मुस्काती,

मन में था विश्वास कि उसको-
नहीं कहीं है जाना,
वही मिला है, जिसे उसे था-
जीवन में अपनाना।

पचम सर्ग

दक्ष नगर में चहल-पहल थी-
सब थे मोद मनाते,
घर-घर में जन-जन थे अपने-
मन के गीत सुनाते,

राज व्यवस्था थी कुछ ऐसी-
भेद नहीं दिख पड़ता,
अभी तलक उस जीवन-क्रम में-
आ न सकी थी जड़ता,

जो भी जैसे ज्ञान योग्य था-
वैसा ही पढ पाता,
बल-विवेक औं विद्या से ही-
मान-प्रतिष्ठा पाता,

ज्ञान-सुविज्ञ तथा पडित का-
सदा समादर होता,
कोई ज्ञानी किसी मूर्ख के-
आगे कभी न रोता,

शिक्षा का विस्तार चतुर्दिक-
वहाँ हुआ था भारी,
भेद नहीं था किसी तरह का-
नर हो या हो नारी

जो भी जैसी सुविधा की कुछ-
चाह हृदय में रखता
उसको वैसी पूर्ण प्रगति का-
पूरा साधन मिलता,

सब में थी कर्तव्य-भावना-
काम सभी जब करते,
अपने सत्कर्मों के कारण-
नहीं किसी से डरते,

पद-कुर्सी की होड़ नहीं थी-
सब का प्राप्य सुलभ था,
ईर्ष्या की अग्नि में जलने-
वाला नहीं शलभ था,

छीना-झपटी नहीं मची थी-
सब थे सुख से रहते,
एक दूसरे से सब मिलकर-
बात प्रेम की कहते,

बाल-बालिका में तिलभर भी-
भेद नहीं था मन में,
दोनों खिलते मधुर सुमन थे-
जीवन के उपवन में,

बाल-बालिका एक साथ ही-
विद्या अर्जन करते,
ज्ञान-ज्योति से एक साथ ही-
हृदय-गुहा को भरते,

वाल-वालिका जीवन-साथी-
स्वय वहाँ चुन लेते,
स्वय परस्पर के सब गुण को-
खुद ही वे गुन लेते,

ऐसे में भी दक्षराज को-
चिन्ता लगी सताने
आकुल-व्याकुल नित रहते वे-
जाने या अनजाने,

सब सतान करें सब अपने-
जिसमें उनका हित है,
किन्तु पिता औं माता का भी-
कुछ कर्तव्य निहित है,

ज्ञात उन्हें था हुआ, सती में-
जागा राग पुराना
महादेव को चाह रही है-
जीन मित्र बनाना

यह प्रस्ताव नहीं था स्वीकृत-
इससे खेद जगा था
उनके शान्त हृदय में इससे-
कोई शूल लगा था।

षष्ठ सर्ग

बालारुण की दीप्ति धरा पर-
उतर रही थी न्यारी,
दक्ष नगर में विहँस रही थी-
जगमग क्यारी-क्यारी,

चप्पा-चप्पा सजा-धजा था-
मनमादक सब लगता,
घर-घर में अनुभव होता था-
जीवन-राग सुलगता,

सुबह मनोहर सती-कक्ष में-
धूप-दीप थे जगते,
लगते अनगिन गीत हृदय के-
रह-रह वहाँ उभरते,

फूलों की थी माला कर में-
सम्मुख चित्र सलोना,
अगरु-गंध से हुआ सुवासित-
घर का कोना-कोना,

सम्पुट कर में पुष्प-हार औं-
थे उन्मीलित लोचन,
बिठा चुकी थी अपने हिए के-
पिए को मन के आँगन

भाव भरी, अनभिज्ञ जगत से-
अपने में थी खोई
दक्ष-सुता के दृग में जाने-
कितनी रजनी रोई

सम्मुख अंकित चित्र विहँसता-
उस पर ध्यान लगाए,
दक्ष सुता बेसुध बैठी थी-
मन में धुनी रमाए,

उसी समय दक्षाली सहसा-
सती कक्ष में आई,
किन्तु देखकर छटा वहाँ की-
मन-ही-मन घबड़ाई,

सती नहीं, यह विभा अलौकिक-
मूर्त्तित थी उस क्षण में,
लगा कि जैसे विद्युत कौंधी-
जलदाछन्न गगन में,

अस्थि-चाम का नहीं, वपुष यह-
तेज-पुञ्ज था अविकल,
शान्त शिविर में जैसे कोई-
दीप-शिखा हो अविचल,

ज्योति अकम्पित, करती है जो-
दिशा-दिशा आलोकित,
जिसके तार-तार से होते-
वेदों के स्वर गुंजित,

जिसके कारण कण-कण जग का-
होता है उद्भासित,
सूर्यचन्द्र की विभा उसी से-
रहती सदा प्रकाशित,

यही ज्योति है जिसकी खातिर-
योगी योग रमाते,
जग से कटकर साधु-तपस्वी-
अपनी अलख जगाते,

महाज्योति है यही कि जिससे-
प्राण-वायु है चलता,
महाअखण्डित इस प्रकाश में-
जीवन का स्वर जगता

इसे देखकर दक्षाणी थी-
विस्मित और अचभित,
मेरी गोदी में यह कैसी-
प्रभा हुई उद्भासित

इतने में जो आँख खुली तो-
स्वय सती ने सम्मुख
देखा-माँ है बनी उसी के-
पुहुप-दृगों की शिलिमुख,

जिसके कारण कण-कण जग का-
होता है उद्‌भासित,
सूर्यचन्द्र की विभा उसी से-
रहती सदा प्रकाशित,

यही ज्योति है जिसकी खातिर-
योगी योग रमाते,
जग से कटकर साधु-तपस्वी-
अपनी अलख जगाते,

महाज्योति है यही कि जिससे-
प्राण-वायु है चलता,
महाअखण्डित इस प्रकाश में-
जीवन का स्वर जगता,

इसे देखकर दक्षाणी थी-
विस्मित और अचभित,
मेरी गोदी में यह कैसी-
प्रभा हुई उद्‌भासित,

इतने में जो आँख खुली तो-
स्वय सती ने सम्मुख
देखा-माँ है बनी उसी के-
पुहुप-दृगों की शिलिमुख,

जिसके कारण कण-कण जग का-
होता है उद्भासित,
सूर्यचन्द्र की विभा उसी से-
रहती सदा प्रकाशित,

यही ज्योति है जिसकी खातिर-
योगी योग रमाते,
जग से कटकर साधु-तपस्वी-
अपनी अलख जगाते,

महाज्योति है यही कि जिससे-
प्राण-वायु है चलता,
महाअखण्डित इस प्रकाश में-
जीवन का स्वर जगता,

इसे देखकर दक्षाणी थी-
विस्मित और अचभित,
मेरी गोदी में यह कैसी-
प्रभा हुई उद्भासित

इतने में जो आँख खुली तो-
स्वय सती ने सम्मुख
देखा-माँ है बनी उसी के-
पुहुप-दृगों की शिलिमुख,

जिसके कारण कण-कण जग का-
होता है उद्‌भासित,
सूर्यचन्द्र की विभा उसी से-
रहती सदा प्रकाशित,

यही ज्योति है जिसकी खातिर-
योगी योग रमाते,
जग से कटकर साधु-तपस्वी-
अपनी अलख जगाते,

महाज्योति है यही कि जिससे-
प्राण-वायु है चलता,
महाअखण्डित इस प्रकाश में-
जीवन का स्वर जगता,

इसे देखकर दक्षाणी थी-
विस्मित और अचंभित,
मेरी गोदी में यह कैसी-
प्रभा हुई उद्‌भासित,

इतने में जो आँख खुली तो-
स्वय सती ने सम्मुख
देखा-माँ है बनी उसी के-
पुहुप-दृगों की शिलिमुख

जिसके कारण कण-कण जग का-
होता है उद्भासित,
सूर्यचन्द्र की विभा उसी से-
रहती सदा प्रकाशित,

यही ज्योति है जिसकी खातिर-
योगी योग रमाते,
जग से कटकर साधु-तपस्वी-
अपनी अलख जगाते,

महाज्योति है यही कि जिससे-
प्राण-वायु है चलता,
महाअखण्डित इस प्रकाश में-
जीवन का स्वर जगता,

इसे देखकर दक्षाणी थी-
विस्मित और अचभित,
मेरी गोदी में यह कैसी-
प्रभा हुई उद्भासित,

इतने में जो आँख खुली तो-
स्वय सती ने सम्मुख
देखा-माँ है बनी उसी के-
पुहुप-दृगों की शिलिमुख

जिसके कारण कण-कण जग का-
होता है उद्भासित,
सूर्यचन्द्र की विभा उसी से-
रहती सदा प्रकाशित,

यही ज्योति है जिसकी खातिर-
योगी योग रमाते,
जग से कटकर साधु-तपस्वी-
अपनी अलख जगाते,

महाज्योति है यही कि जिससे-
प्राण-वायु है चलता,
महाअखण्डित इस प्रकाश में-
जीवन का स्वर जगता,

इसे देखकर दक्षाणी थी-
विस्मित और अचम्भित,
मेरी गोदी में यह कैसी-
प्रभा हुई उद्भासित,

इतने में जो आँख खुली तो-
स्वय सती ने सम्मुख
देखा-माँ है बनी उसी के-
पुहुप-दृगों की शिलिमुख

जिसके कारण कण-कण जग का-
होता है उद्भासित,
सूर्यचन्द्र की विभा उसी से-
रहती सदा प्रकाशित,

यही ज्योति है जिसकी खातिर-
योगी योग रमाते,
जग से कटकर साधु-तपस्वी-
अपनी अलख जगाते,

महाज्योति है यही कि जिससे-
प्राण-वायु है चलता,
महाअखण्डित इस प्रकाश में-
जीवन का स्वर जगता,

इसे देखकर दक्षाणी थी-
विस्मित और अचंभित,
मेरी गोदी में यह कैसी-
प्रभा हुई उद्भासित

इतने में जो आँख खुली तो-
स्वय सती ने सम्मुख
देखा-माँ है बनी उसी के-
पुहुप-दृगों की शिलिमुख,

देख रही टकटकी लगाए-

मन में चिन्ता भारी,

लगीं बरसने झर-झर उसकी-

आँखे भी रतनारी,

बोली-बेटी! समझ गयी मैं-

तुम हो जग की धात्री।

तुम हो दुर्गा, शिवा तुम्हीं हो-

परम शक्ति-अवधात्री।

गहन मोह है, इसीलिए हम-

समझ न कुछ भी पाते,

अपने मन के अन्धकार में-

रहते हैं भरमाते,

आँख खुली अब मेरी, तेरा-

पथ नहीं रुक सकता,

जिसने तुम्हें न जाना, वह है-

जग में सदा भटकता,

इतना कह कर दक्षाणी तो-

गयी वहाँ से बाहर,

किन्तु सती थी ध्यान लगाए-

अपने प्रभु के ऊपर।

सप्तम सर्ग

देख रहे थे उनके मन की-
वात न कोई होती,
इसीलिए उनकी आँखें थीं-
वरवस दुख से रोती,

जान रहे थे सती हुई थी-
गगाधर की प्यारी,
यही बात उनके प्राणों में-
खटक रही थी भारी,

कहाँ दक्ष का नगर कि जैसे-
फूलों की हो माला,
और कहाँ यह शशिधर निर्धन-
भाँग-धतूरे वाला,

हम विमान पर चलते, वह तो-
वसहा पर है चलता,
भूत-प्रेत के साथ सदा ही-
रहता क्रीड़ा करता,

रहने को है गेह न कोई-
पर्वत पर ही रह कर,
जान बचाता किसी तरह हिम-
आतम-वर्षा सहकर,

गहन सोच में दक्षराज थे–
दक्षाणी तब आई,
अपनी रूपवती कन्या की–
मूर्त्त ज्योति बतलाई,

कहा कि कैसा रूप अलौकिक–
जाग उठा था घर में,
प्रकट हुई थी कैसी आभा–
उसके रूप प्रखर में ?

बोली फिर दक्षाणी–राजन!
मन को अब समझाएँ,
होगा सब कल्याण सुता की–
मन से खुशी मनाएँ,

यों ही व्यर्थ हृदय में कोई–
दुविधा कभी न पालें,
कन्या होगी सफल–मनोरथ–
मन का कष्ट मिटालें।

अष्टम सर्ग

नयी-नयी दूबों में खिलकर-
नूतन आभा हँसती थी,
किरण-किरण में वही चमकती-
मन में जो छवि बसती थी,

आज वहाँ कैलाश शिखर पर-
धवल विभा मुस्काई थी,
लगता, कोई उत्सव की ज्यों-
नयी समा बँध आई थी,

एक शिला पर चन्द्रचूड़ थे-
बैठे भावामग्न हुए,
लगा कि जैसे शुभ आयोजन-
के थे कोई लग्न हुए,

पास वहीं पर देव-वृषभ भी-
बैठे कुछ सुस्ताते थे,
तन से लिपटे विषधर रह-रह-
अपने फन फैलाते थे,

बाल-सूर्य की रश्मि धरा को-
लगता स्वयं सजाती थी,
दिशा-दिशा की नयी रागिनी-
मधुमय बीन बजाती थी,

ध्यान-मग्न हो शंकर कोई-
    रूप किरण में देख रहे,
उतर रही उषा की छवि में-
    धूमिल भाव परेख रहे

अनायास उनके अन्तर में-
    रूप रती का जाग गया,
लगा कि मन के शून्य प्रान्त में-
    गुंजित है अनुराग नया,

इतने में ही महादेव ने-
देखा सम्मुख रूपवती,
प्रात-किरण से धुली विहँसती-
वहाँ खड़ी थी स्वय सती,

यही सती जो चित्रित शिव को-
घर में धूप दिखाती थी,
और पुन कैलाश शिखर पर-
आकर फूल चढाती थी,

वह आती थी रोज किन्तु शिव-
मिलते ही थे यदा-कदा,
जाती थी वह लौट हृदय में-
भरकर अनुनय-भाव सदा,

किन्तु आज थे भूतनाथ ही-
स्वय प्रतीक्षालीन यहाँ,
उसको खुद अपननाने को हैं-
बैठे भाव-प्रवीण वहाँ,

लगा, सती के पूरे तन में-
क्षण में ही रोमान्च हुआ,
दृग के आगे नवल भाव का-
मानों, मधुरिम नाच हुआ,

मान उठे वह नाथ मुझे अब-
उसी ही स्वीकार करें,
नहीं लिखा अब रह पाऊँगी-
उसी अधिकार करें

यहा निरोधन के अब वाले-
मन को मत उद्विग्न करो,
चाह रही जो वह सब होगा-
मन में पहले शान्ति धरो

नवम् सर्ग

दक्षराज का राज सजा था–
    जन-जन सब थे नाच रहे,
मोद-मगन सब विहँस रहे थे–
    सब भर सहज कुँलाच रहे,

देख रहे थे परिजन-पुनजन-
भाव नया जग आया था,
लगता सब के मन में कोई-
नूतन राग समाया था,

बात नगर में फैल गयी थी-
प्रेम-व्यथा कब छिपती है?
लौ लगने पर ज्योति शिखा की-
दिग्-दिगन्त तक दिपती है,

जान गए सब सती हृदय से-
शकर जी को चाह रही,
एक निष्ठ आराधन में ही-
सहती व्यथा अथाह रही,

शकर के मन में भी नूतन-
भाव सहज जग आया था
जनम-जनम के सबधों का-
मन में राग समाया था,

नारद जी औ सप्तर्षी-गण-
दक्षराज के पास गए,
शकर का सवाद लिए सब-
मन में भर उल्लास गए,

सब ने कहा कि-हम सब राजन्!
शैल राज से आए हैं,
सिद्ध-मनस्वी परम-पुरुष-शिव-
का सन्देशा लाए हैं,

आप जानते सृष्टि सदा ही-
युग्म भाव से चलती है,
प्रकृति-पुरुष जब मिलते, जग में-
कर्म-भावना जगती है,

बिना एक के जग-प्रपच यह-
कभी नहीं चल पाएगा,
साधन का सब कर्म जगत में-
स्वय विफल हो जाएगा,

जड़-चेतन औं निखिल चराचर-
इससे ही परिचालित है,
दो तत्त्वों से ही निर्मित यह-
भुवन-भास्कर भावित है,

साथ-साथ सच माने सब दिन-
ही है सती महेश-प्रिया,
जनम-जनम से उसने पावन-
सिद्धनाथ को हृदय दिया,

परम पुरुष हैं एक, दूसरी-
परम तापसी नारी हैं,
शकर उसके प्यारे हैं, वह-
शकर जी की प्यारी हैं,

'हाँ' भर कह दें, तब तो उत्सव-
साज सजाए जाएँगे,
दक्ष-नगर में शुभ्र लग्न के-
शख बजाए जाएँगे,

यह सबध चिरतन है, मन-
में लावें सदेह नहीं,
यहाँ विकार न तिलभर देखें-
स्वच्छ गगन में मेह नहीं,

जब-जब जनमी सती, हृदय से-
शशि शेखर का वरण किया,
उनको ही आराध्य मान कर-
उनका ही अनुसरण किया

सती कभी भी महोदव से-
नहीं विलग हो पाएगी
उनके ही अनुराग राग में-
अपना स्वत्व मिटाएगी,

इसीलिए है सत्य कि मेरा-
दक्षराज प्रस्ताव सुनें,
वीरेश्वर के साथ सुता का-
मन से शुभ सबंध गुनें,

जो होना है, वही आप से-
हमने है सन्देश कहा,
और यही कहने को हमने-
आने का है क्लेश सहा,

होकर यही रहेगा, निश्चय-
मन से यह स्वीकार करें,
आज्ञा दे दें सुता सती को-
पुरहन अगीकार करें

❖ •• ❖

दक्षराज को लगा कि जैसे-
उर में भीषण आग लगी,
नयी भावनाओं से कस कर-
नागिन कर फुत्कार जगी

चीख उठे वे, नहीं-नहीं मैं-
कभी नहीं यह मानूँगा,
बसहा-पति को अपने घर में-
कभी नहीं बैठाऊँगा,

वह ढोंगी है महा अघोरी-
तन पर भस्म रमाता है,
भूत-प्रेत से सँग वह हरदम-
अपना मन बहलाता है,

कुछ भी उसके पास नहीं, मृग-
छाला धारण करता है,
सुबह-शाम बस भाँग-धतूरे-
का ही पारण करता है,

नागों से है प्रेम, उन्हें वह-
अपना भूषण कहता है,
कैलाश-राज कहलाता, लेकिन-
मरघट में ही रहता है,

ऐसे के सँग सुता हमारी-
कहो कौन सुख पाएगी?
भूत-प्रेत से डरते डरते-
अपना प्राण गँवाएगी

नहीं-नहीं, मैं कभी आपकी-
बात नहीं यह मानूँगा
कोई अच्छा देव-पुरुष वर-
पुत्री के हित लाऊँगा,

जाएँ आप खुशी से मुझको–
और न अब उद्विग्न करें,
मन में है परिताप भयकर–
मुझको अधिक न खिन्न करें,



नारद औं सप्तर्षी–गणों ने–
पुन –पुन फिर समझाया,
दक्षराज के मन में लेकिन–
तथ्य नहीं कुछ आ पाया,

सभी जनों को दक्षराज ने–
खिन्न हृदय से विदा किया,
पुन नहीं फिर इस वार्त्ताहित–
आने का सकेत दिया,

दक्षराज के मन को भीषण–
अहकार ने घेरा था,
अस्तिमत भावों का मन पर–
छाया घोर अँधेरा था,

अपने से आगे बढ़कर कुछ–
देख नहीं वे पाते थे,
विज्ञ जनों की सम्मति को भी–
मुँह पर ही झुठलाते थे,

नियति कठिन है, बात नहीं जो-
प्रज्ञा की सुन पाते हैं,
निश्चय उनकी दुर्गति होती-
जीवन भर पछताते हैं।

दशम् सर्ग

दक्षराज थे चिंतित कैसी–
घटा घोर घिर आई है ?
अपने घर में ही अनजाने–
किसने आग लगाई है ?

मेरी पुत्री और मुझी से-
भेद छिपाए रहती है,
मुझे छोड़, क्यों दुनिया भर को-
मन की बातें कहती है?

औरों से जब सुनता हूँ तब-
मन विह्वल हो जाता है,
झूठ कहूँ या सत्य कहूँ कुछ-
समझ नहीं मन पाता है,

नारद ने जो बात कही वह-
सत्य नहीं हो सकती है,
मेरी सुता प्रिया पशुपति की।
कहते जिह्वा रुकती है,

दक्षराज ने घर में जाकर-
पत्नी से सब बात कही
नारद की बातों से दृग में-
कैसी घिरती रात रही?

कहा कि रानी। मेरे उर में-
धू-धू जलती ज्वाला है,
जाने इसका अन्त कहाँ है?
अब क्या होने वाला है?

मेरी सुता सती ने मुझको-
देखो, कितना कष्ट दिया?
जिसका तिलार भाव नहीं था-
उसने कैसा कर्म किया?

नेह अगर करना ही था तो-
नर्त्तक ही था एक यहाँ?
विषमनयन से बढ़कर मिलते-
नर-वर योग्य अनेक यहाँ,

सभी तरह जो निर्धन, उससे-
कैसा सुख वह पाएगी?
डर है भीषण निर्धनता में-
घुट-घुट प्राण गँवाएगी,

कुछ तो तुम समझाओ, देखो-
बच्ची है नादान अभी,
अनुचित और उचित कर्मों का-
तनिक न उसको भान अभी,

सुनकर बोली सती यही है-
निश्चय, यह हो जाने दो,
मेरा जन्म हुआ है केवल-
त्र्यम्बक में खो जाने को,

मेरे मन में एकमात्र अब-
पचानन मुस्काता है,
यह सबध न पल भर का यह-
जनम-जनम का नाता है,

चाहे तन यह छूट जाय पर-
गगाधर क्यों छूटेंगे ?
कहीं और जो ताकूँ मेरे-
नयन, समझलो, फूटेंगे,

मैं शकर की शकर मेरे-
इसमें कहाँ रुकावट है ?
मेरे प्राणों की धड़कन में-
बस उनकी ही आहट है,

जनम-जनम से हूँ मैं उनकी-
शिव ही मेरे स्वामी हैं,
एक दूसरे के हित भू पर-
दोनों प्राणी कामी हैं,

हम दोनों का प्रेम सनातन-
भूतल का उजियाला है,
सागर की उद्दाम लहर को-
कौन रोकने वाला है ?

पिता हमारे सबधों को-
नहीं समझ कुछ पाते हैं,
भौतिकता के बन्धन में ही-
बँधे-बँधे रह जाते हैं,

चाहे कुछ हो महोदव को-
छोड़ नहीं मैं पाऊँगी,
शिव शकर के रन्ध्र-रन्ध्र में-
मैं तो सहज समाऊँगी,

वृषभकेतु को त्याग कभी भी-
प्राण नहीं रख पाऊँगी,
जहाँ-जहाँ शितिकठ रहेंगे-
वहाँ-वहाँ मैं जाऊँगी,

  

बात सती की सुनकर मानो-
दक्षराज को आग लगी,
क्रोधानल की अन्तरतर में-
लहर विपुल उद्दाम जगी,

गरज उठे, क्यों बात न सुनती-
ताकत से समझाऊँगा,
शैल शिखर के उस ढोंगी को-
जाकर सबक सिखाऊँगा,

पैर पटक कर लगे काँपने-
मन में भीषण दाह उठा,
लगा कि कोई दैव-घात से-
अंग-अंग व्यथित कराह उठा,

• •• •

दक्ष-सुता ने अन्तर्मन से-
शिव को विनत प्रणाम किया,
बिगड़ी वही बना सकते हैं-
आशुतोष का नाम लिया।

एकादश सर्ग

नगपति के हिम शैल-शिखर पर-
नयी चाँदनी खिलती थी,
रजत गध ज्यों स्वर्ण-कलश के-
रस में घुलकर मिलती थी,

दीपित था नीलाम्बर ऊपर-
जगमग नए सितारों से,
जाग रही थी नयी रागिनी-
जीवन के उपहारों से,

भूधर-पति के हिम-खण्डों पर-
नयी विभा-सी जगती थी,
लहर-लहर लहराकर मानो-
महासिन्धु-सी लगती थी,

शान्त नहीं थी प्रकृति किन्तु कुछ-
क्षोभ न भू पर दिखता था,
दुग्ध-धवल प्रस्तर पर मानो-
लेख विधाता लिखता था,

थे योगेश्वर मौन ध्यान में-
कोई पास न जाता था
बसहा तक भी उनके सम्मुख-
आने में घबड़ाता था,

जब से नारद गए बताकर-
दक्ष न कुछ भी सुनता है,
अपने मद में वह अभिमानी-
नहीं सत्य को गुनता है,

तब से ही धूर्जटि के मन में-
भीषण द्वन्द्व समाया था,
कैसे हो उद्धार सती का-
तथ्य न मन में आया था?

चिन्ता-ग्रस्त हृदय मथन में-
ध्यान-लीन तल्लीन हुए,
अपनी सुध-बुध खोकर मानो-
मन से व्यथा-प्रवीण हुए,

मन में भाव जगा अब जाकर-
स्वय दक्ष को समझाएँ,
उनकी सुता शिवा है भू पर-
बात उन्हें अब बतलाएँ,

किन्तु हृदय में रोष जगा वे-
थर-थर तन से काँप उठे,
चन्द्र मौल का डोल उठा औं-
फन काढे सब साँप उठे,

दायाँ पग उठ गया अचानक-
एक पाँव पर खड़े रहे,
नजर उठाकर देख गगन को-
शिला-खण्ड से अड़े रहे,

डमरू लेकर हाथ उठाया-
गूँज उठा स्वर डिम्-डिम्-डिम्,
ऐसा नाद उठा अम्बर तक-
हुई चाँदनी भी मद्धिम,

स्वर-पर-स्वर जो उठे गगन में-
घिरे स्वरों के चक्रायन,
लगा कि जैसे खुला अचानक-
नए लोक का वातायन,

चन्द्रकेतु के ताल-ताल पर-
हवा थिरकती आती थी,
शैल सिखर थे झूम उठे-
चट्टान पिघलती जाती थी,

नाच उठे थे हिम के कण-कण-
पूरा भूधर डोल उठा,
महाप्रलय की भाषा मानो-
दिग्-दिगन्त था बोल उठा,

थर-थर-थर लगे काँपने-
बसहा तक था झूम रहा,
जटाजूट में घूर्णित गंगा-
का जल अपने घूम रहा,

चकित-थकित-सी दिशा-दिशा थी-
शान्त प्रकृति अकुलाई थी,
भूत-प्रेत सब देख रहे थे-
सती दौड़ती आई थी,

डमरू का स्वर गूँजा जैसे-
दक्ष-नगर वह छोड़ चली,
स्वर से बिंधी अचानक बेबस-
लज्जा-बन्धन तोड़ चली,

आँचल था उड़ रहा हवामें-
केश-राशि लहराती थी,
देख रहे थे जड़-चेतन सब-
सती अकेली आती थी,

दक्ष सुता ने अवढर शिव के-
पाद पद्म को पकड़ लिया,
महाराग के महाभाव में-
अपने को था जकड़ लिया,

नृत्य-निरजन रुका अचानक-
डमरू का स्वर बन्द हुआ,
हुए शान्त नटराज धरा पर-
फिर से परमानन्द हुआ,

कहा अजिन ने-सती तुम्हारे-
पिता नहीं कुछ जान रहे,
अपने सम्मुख दीन हीन औ-
तुच्छ मुझे हैं मान रहे,

कहा सती ने-शान्त रहें मैं-
बात सभी समझाती हूँ,
पूज्य पिता के क्रोधानल में-
मैं भी जलती जाती हूँ,

इतना कह वह बैठ गयी जब-
अपने प्रिय के पास वहाँ
लगा कि जैसे प्रकृति-पुरुष का-
जागा नव उल्लास वहाँ।

द्वादश सर्ग

हिम मडित स्फटिक शिला पर-
भूतनाथ थे बैठ गए,
उनके मन में जाग रहे थे-
भाव अनेकों नए-नए,

शान्त यामिनी सहज सजग थी-
मुक्ता-दल से तारे थे,
सन्नाटे के स्वर अनुरंजित-
लगते प्यारे-प्यारे थे,

वहीं पास में सती विनीता-
बैठी थी मृदु भाव भरी,
लगती थी ज्यों नवल कुमुदनी-
आज आनक म्लान पड़ी,

सिद्धनाथ ने कहा सती से-
दुख की कोई बात नहीं,
बहुत दिनों तक रह पाएगी-
बिछुड़न की यह रात नहीं,

जिसका जो है प्राप्य उसे वह-
निश्चय ही मिल जाएगा,
किसी तरह का कुछ अवरोधक-
रोक न उसको पाएगा,

सृष्टि विमल जिससे परिचालित-
वही नियम हम पाल रहे
कभी नहीं हम अपने मन पर-
कोई घेरा डाल रहे

शिव का जो अर्द्धांग उसे तो-
अपना मुझे बनाना है,
अपनी जो परछाई उसको-
अपने-पन में लाना है,

नहीं दक्ष को ज्ञात कि कैसे-
कचन तप कर गलता है?
उन्हें नहीं कुछ पता कि कैसे-
जीवन का क्रम चलताा है?

ब्रह्म के वे बड़े लाड़ले-
अनायास सब उन्हें मिला,
जब चाहा, तब उनके मन की-
बगिया का था सुमन खिला,

जीवन में उत्थान-पतन औं-
बाधा कैसी होती है?
वे क्या जानें, सर्वस खोकर-
साँस-साँस क्यों रोती है?

ब्रह्मा-सुत हैं, ब्रह्म कृपा से-
दक्ष-नगर का राज मिला,
कोई भी कुछ बोल न पाया-
जीवन का सब साज मिला,

किन्तु वही हठ-धर्मी, मेरी-
जड़ ही को है काट रहा,
शिव की शक्ति शिवा को उससे-
भिन्न समझकर बाँट रहा,

किन्तु नियति सब की परिचालक-
चलती है निर्बाध सदा,
सात्विक अन्तरतर से जाग्रत-
करती पूरी साध सदा,

तुम हो मेरी शक्ति, तनिक भी-
वरण तुम्हारा पाप नहीं,
दक्ष-अवज्ञा से भी होगा-
मुझको पश्चाताप नहीं,

तुम्हें प्राप्त करना है निश्चय-
किन्तु अतर्किक राय यही,
चलकर विधि से कह दो अपने-
मन की बातें सही-सही,

जो भी कहें विधाता उनकी-
बात सभी हम मानेंगे,
उनके सम्मुख कभी नहीं हम-
अपने मन की ठानेंगे,

• •

दक्ष-सुता को लिए पिनाकी-
ब्रह्मलोक में आते हैं,
वृद्ध पितामह के सम्मुख सब-
मन की बात बताते हैं,

सुनकर बोले ब्रह्मा-जाओ-
दक्ष न कुछ कर पाएगा,
अपनी करनी पर वह दम्भी-
निश्चय ही पछताएगा,

सती तुम्हारी अगी है वह-
विलग नहीं रह पाएगी,
उसके पथ की सब बाधाएँ-
अपने ही मिट जाएगी,

दक्ष नहीं सुन पाता है, तो-
दक्षाणी से बात कहो,
देवों के भी महादेव तुम-
तनिक न मन से व्यग्र रहो,

सती तुम्हारी शक्ति अलग वह-
तुम से कब रह पाएगी,
तेरे तन के रोम-रोम में-
तेरी शक्ति समाएगी,

मैं देता हूँ जन्म, सृष्टि को-
विष्णु सदा पालन करते,
तुम हो रुद्र भुवन में तुम ही-
दम्भी का सब मद हरते,

कोई बाधा तेरे पथ में-
कभी नहीं टिक पाएगी,
निश्चय मानो शक्ति तुम्हारी-
सती तुम्हें मिल जाएगी,

❖ ❖ ❖

ब्रह्मा की बातों से सब के-
मन में नव आनन्द हुआ,
लगा कि दक्ष-सुता का तत्क्षण-
शकर से सबध हुआ।

त्रयोदश सर्ग

विधि से आशीर्वाद प्राप्त कर–
आई लौट सती जब घर पर,
मन में नव अह्लाद जगा था–
नयी प्रिति में हृदय पगा था,

रोम-रोम तक जाग रहा था-
दृग से प्रेमिल अश्रु बहा था,
महादेव पर दृष्टि लगी थी-
मन में नूतन ज्योति जगी थी,

देख रही थी हृदय सिहरना-
जाग रहा था नूतन सपना,
अपने मन को प्राप्त करूँगी-
शिव की मैं अर्द्धांग बनूँगी,

बोली माता को समझाकर-
दृग से पावन अश्रु बहाकर,
स्वय पितामह ने बतलाया-
मेरा सहज स्वरूप दिखाया,

मैं हूँ शिवा, शक्ति शिव जी की-
सदा रहूँगी अपने पी की,
अलग न कोई कर सकता है-
क्षण भर को ही भय तकता है

जनम-जनम का है यह नाता-
कोई इसको समझ न पाता,
विधि ने मुझे बताया जाओ-
अपनी जननी को समझाओ,

वही सहायक होगी इस क्षण-
काटेगी सब बाधा बन्धन,
इसीलिए कहती हूँ जानो-
मेरी पावन छवि पहचानो,

हृदय पिता का बहुत मलिन है-
उन्हें मनाना बड़ा कठिन है,
माता का मन गगाजल है-
तुम पर ही विश्वास अटल है,

दक्षाणी बोली सब सुनकर-
भाव सती का मन में गुनकर,
मेरा भी मन कहता निश्चय-
होगा जीवन में अरुणोदय,

तम का बादल छँट जाएगा-
हर्ष हमारे घर आएगा,
क्षणभर का यह घिरा अँधेरा-
कट जाएगा दुख का फेरा,

शिव को उसकी शक्ति मिलेगी-
मन की कलिका शीघ्र खिलेगी,
मन से तुम को आशिष देती-
तेरी शकल बलैया लेती,

जाओ, तुम आनन्द मनाओ-
पूर्ण मनोरथ सफल बनाओ
घर में मैं सब कुछ सह लूँगी-
तुम पर आँच न आने दूँगी

स्वय दक्ष को समझाऊँगी-
उन्हें राह पर मैं लाऊँगी,
उसकी है जो उसे मिलेगी-
धरती की गति नहीं रुकेगी,

सृष्टि सदा ऐसे ही चलती-
माया प्रतिपल सबको छलती,
माया ही है जिसके कारण-
रहता अन्तर वर्तित क्षण-क्षण,

अहकार भी जगता उससे-
दक्ष हुआ है विह्वल जिससे,
क्या है भावी समझ न पाता-
अपने मद में है मदमाता

बेटी! कोई सोच न करना-
नियति प्रबल है कभी न डरना,
मैं ही बात कहूँगी, जाकर-
दक्षराज को सब समझाकर,

है विश्वास कि मानेंगे ही-
सत्य शिव का जानेंगे ही,
अशिव देती चिन्ता त्यागो-
तिमिर मिटेगा निश्चय जागो

सुनकर बात दक्ष के मन में-
आग लगी ज्यों भीषण वन में,
लगा दहकने तन मन सारा-
दिखा न कोई कूल-किनारा,

गरज उठे मैं नहीं सुनूँगा-
यह संबंध न होने दूँगा,
शिव के साथ सती का जीवन।
कभी न होगा यह गठ-बन्धन।

ब्रह्मा के कहने से क्या है।
भूतों का शिव दास बना है।
उसके संग यह सती हमारी-
सदा रहेगी मारी-मारी,

मुझको यह स्वीकार नहीं है-
शिव का कुछ आधार नहीं है,
सती लाडली शिवा नहीं है-
निश्चय भ्रम की बात कहीं है,

तिमिर-गर्त में मैं न पड़ूँगा-
ऐसा कभी न होने दूँगा,
जाकर कह दो बेटी, सत्वर-
और किसी को वर ले जाकर,

इसमें ही है, मान सभी का-
गौरव औं सम्मान सभी का,
कह दो, अपना हठ वह छोड़े-
शकर से सब नाता तोड़े,

दक्षाणी तब बोली-राजन्!
वृथा हृदय में करते गजन,
होनी होकर सदा रहेगी-
नियति आप से नहीं टलेगी,

स्वय पितामह ने बतलाया-
दक्ष हृदय से है घबडाया,
किन्तु भोर है होनेवाला-
नहीं टिकेगा यह अँधियाला,

तम के मन का ताप मिटेगा-
दक्ष सुता को आशिष देगा,
इसको कोई रोक न सकता-
निश्चय है जो होकर रहता,

कहा दक्ष ने नहीं सुनूंगा-
ऐसा कभी न होने दूंगा,
जिससे गुरु में घृणा जगी है-
मेरे मन में आग लगी है,

नहीं सुता मेरी हो जाए।
मेरा जामाता कहलाए।
नहीं, नहीं मैं नहीं सुनूंगा-
शिव को कन्या कभी न दूंगा।

कहकर पहुंचे शयन कक्ष में-
दक्ष संजोये व्यथा वक्ष में,
आँखे लहलह दहक रही थी-
मन में कोई शान्ति नहीं थी,

बीत गयी थी रात भयानक-
दक्षाणी थी सती-सहायक,
बोली-बेटी अपने पथ पर-
पाँव बढ़ाना है अब सत्वर,

पिता तुम्हारे मान न सकते-
सदा रहेंगे व्यथित भटकते,
लेकिन मैं हूं साथ तुम्हारे-
देखो नभ में चाँद-सितारे,

ये सब पथ पर सदा खिलेंगे-
निश्चय शकर तुम्हें मिलेंगे,
है आशिष कि विहँसे जीवन-
जहाँ रहो सुख बरसे प्रतिक्षण।

चर्तुदश सर्ग

माता का आसीस प्रबल है-
जीवन का अनुपम सम्बल है,
　　माता से बढ़कर इस जग में-
　　रक्त नहीं अपना रग-रग में,

जीवनदायी माँ है भू पर-
देव-देवियों से भी ऊपर,
माता की होती हर वाणी-
अपनी संतति की कल्याणी,

स्वस्ति वचन माता से पाकर-
चली सती मन में हर्षाकर,
अब क्या बाधा? कैसा बन्धन?
शेष हुआ जड़ता का क्रन्दन,

सती हृदय में मोद मनाती-
आई बगिया में हर्षाती,
दृग से रंजित अश्रु बहा था-
रोम-रोम तक नाच रहा था,

पुलकित तन में भाव नए थे-
सपने मनहर जाग गए थे,
बहुत दिनों तक रही प्रतीक्षा-
शेष हुई अब कठिन परीक्षा,

जहाँ-जहाँ जाती थी, उसके-
पथ पर कलियाँ खिलती हँस के,
कंकड़-पत्थर भी लगते थे-
कोमल सुमनों से जगते थे,

तन-मन स्पन्दन नीलाम्बर-
धरती स्वर्णिम सुषमा का घर
नयन जहाँ नाच उठ पाते थे-
भाव स्पर्श से लहराते थे,

लता-गुल्म सब लगते जैसे-
स्वागत में हों लगते वैसे
पत्ती-पत्ती पर अरुणाई-
लेकर नाच उठी तरुणाई,

सिहरन सब सिमट गयी थी-
पत्र-पत्र तक छिप गयी थी,
सती हृदय में मधुर राग था-
जीवन का सुरभित पराग था,

जड़ता के बन्धन सब ढीले-
लगते पत्थर हुए पनीले,
कण-कण भाव-विभोर हुए थे-
सरस-परस सब ओर हुए थे,

झूम रही थी सती हृदय से-
पुलकित तन नव भाव उदय से
सफल हुए थे सकल मनोरथ-
कुसुमित थे अब जीवन के पथ,

नृत्य-निरत पाँवों के सम्मुख-
देखा मृदुल लता थी अभिमुख,
उसे उठाकर कुछ मुस्काई-
एक विटप पर तुरत चढ़ाई,

कर का नव स्पर्श हुआ ज्यों-
रेशा-रेशा विहँस उठा त्यों,
उसको तत्क्षण गले लगाकर-
महाभाव में जागी सत्वर,

दिशा-दिशा लगती थी भास्वर-
छलक रही मस्ती की गागर,
नहीं कहीं तम का था डेरा-
हुआ हृदय से लुप्त अँधेरा,

नयी विभा थी दृग में आई-
रस से धरती थी सरसाई,
नील गगन की सरस-हरस था-
अग-जग तक का पुण्य दरस था,

* * *

ऐसे में ही कहीं दूर से-
गूँज उठी ध्वनि मधुर नर से,
लगा कि जैसे ज्योति अखण्डित
नाच उठी है महिमा मण्डित,

सजग विभा ज्यों थिरक उठी है–
भाव–भगिमा बिखर उठी है,
मूर्त्त ज्योति ज्यों बोल रही है–
गाँठ हृदय की खोल रही है,

लगा कि जैसे सागर–मन का–
ज्वार उठा नूतन जीवन का,
क्षण–क्षण जिसका था मदमाता–
नयी विभा का सम्बल पाता,

निश्चय उज्ज्वल विभा खिली थी–
सोने से ज्यों गध मिली थी,
कहीं नहीं था कोई बन्धन–
मुक्त हुआ था जीवन उन्मन,

लगी देखने आँख गड़ाए–
अन्तर में वह मूर्त्ति समाए,
दिव्य ज्योति का है अनुरजन–
महा भाव है जाग्रत क्षण–क्षण,

स्वय ज्योति ज्यों रूप विभा धर–
उतरे इस अवनी पर आकर,
वैसे ही स्वर गूँज रहा था–
मादकता का ज्वार बहा था,

कण-कण जिसमें डूब रहे थे-
जड़ अन्तरतर ऊब रहे थे,
चेतन सृष्टि जगी थी पल-पल-
सात्विक भाव जगा था निश्चल,

कानों में स्वर हुआ निनादित-
मार्ग न था कोई भी बाधित,
फिर भी शका उठी हृदय में-
जागा कम्पन नील निलय में,

सोचा-मन में दृढ़ता लाऊँ-
प्रेमिल क्षण की छवि अपनाऊँ
आज मिला है महा निमत्रण-
जाना ही होगा अब तत्क्षण,

इतने में फिर गूँजा अम्बर-
घोषित था फिर डमरू का स्वर,
डिम्-डिम्-डिम्-डिम् का स्वर नूतन-
आज लगा था कितना पावन,

इसकी ध्वनि में भाव नया था-
कौन कहे। अब उसमें क्या था?
सती हृदय पागलहो आया-
अपना पन ही सारा खोया,

गयी दौड़ सब बन्धन त्यागे-
शकर की प्रतिमा के आगे,
हाथ जोड़ कर बोली-प्रियतम-
मिटा हृदय का सारा सभ्रम,

जय-जय नगपति नाथ-मतगी-
तुम हो मेरे जीवन-सगी,
ग्रहण करो अन्तर का वन्दन-
जनम-जनम का यह अभिनन्दन।।

पचदश सर्ग

डिम्-डिम् स्वर डमरु का गूँजा-
मन में आभा छाई,
लगा कि जैसे नील निलय तक-
छाई नव अरुणाई,

शब्द-शब्द तक जाग उठा था-
गगन-चँदोवा बनकर,
मूर्त्त रागिनी स्वय खड़ी थी-
उतर व्योम से भू पर,

लगी थिरकने पृथ्वी पल-पल-
पवन झूमकर आया,
तन में नूतन सिहरन जागी-
मोद मधुर लहराया,

डिम्-डिम् डमरू गूँज रहा था-
हलचल सी थी छाई,
लगा कि जैसे लहर प्रेम की-
सागर-सी लहराई,

रोम-रोम तन का था कम्पित-
सती हृदय अकुलाया,
लगी धड़कने छाती धड़-धड़-
मन निर्मल भर आया,

नूतन भाव जगा अन्तर में-
भाव-विभोर हुई थी,
शुभ आमत्रण की नव आहट-
चारों ओर हुई थी,

रोक न पाई पाँव अचानक-
आगे को बढ़ आए,
चली कि जैसे तन्तु खींचकर-
अपने पास बुलाए,

स्वर की डोर धरे चल आई-
वह कैलाश शिखर पर,
देवपगा ज्यों शकर-सिर पर-
उतरे स्वय बिखर कर,

भूतनाथ तो नृत्य निरत थे-
पग से ताल बँधा था,
एक-एक पग उठता मानों-
सब कुछ स्वय सधा था,

सती विकल मन दौड़ी सम्मुख-
पग में शीश नवाए,
जैसे कोई कठिन रागिनी-
सरल सुरों में गाए

झुककर किया प्रणाम पकड़कर-
उनके पकज पग को
जैसे नव वरदान मिला हो-
अमरपुरी से जग को

सिहर उठा तन शिव शंकर का-
डमरू भी थम आया,
नृत्य निरत नटराज नयन में-
नव प्रकाश-सा छाया,

चरण कमल पर सती झुकी थी-
अपनी सुध-बुध खोए,
जैसे कोई अपना वैभव-
अपने आप सँजोए,

नृत्य रुका नटवर का, क्षण भर-
वे अब मौन खड़े थे,
नए भाव की लहर-लहर के-
आगे सजग खड़े थे,

हाथ जोड़ कर कहा सती ने-
डमरू नहीं बजाएँ,
मैं तो पास खड़ी हूँ, आएँ-
नागनाथ अपनाएँ,

कोई बाधा बन्धन मुझको-
रोक न अब पाएगा,
मेरे नभ में भी अब मंगल-
मेह मधुर छाएगा,

आज यहाँ हूँ आई,
मूर्त्ति आपकी मेरे मन में-
रहती सदा समाई,

पिता नहीं मानेंगे, लेकिन-
माँ का मुझको बल है,
उनका आशीर्वाद सदा ही-
मेरा पथ-सम्बल है,

जैसे नाद सुना डमरू का-
मन व्यग्र हो आया,
पिता-गेह का सब कुछ तत्क्षण-
लगा मुझे भरमाया,

चरण-धूलि माता की लेकर-
दौड़ी-दौड़ी आई,
महादेव अब ग्रहण करें यह-
दासी है अकुलाई

दिग्-दिगन्त तक जहाँ देखती-
आप दिखाई पड़ते,
श्रवणों में बस डमरू के ही-
नाद सुनाई पड़ते,

मुझमें आप आप में मैं हूँ-
निश्चय ऐसा माने,
सच कहती हूँ, जनम-जनम के
नाते को पहचाने,

एक समस्या थी लज्जा की-
यह भी आज मिटी है,
माँ की आज्ञा में ही भव की-
शक्ति सकल सिमटी है,

दृष्टि लगी है सदा आप पर-
कब स्वीकार करेंगे?
है विश्वास कि शकर मुझको-
अगीकार करेंगे,

भूतनाथ ने कहा-सती तुम-
मेरी अर्द्धांगी हो,
मेरे हर पल-क्षण की तुम ही-
केवल सहभागी हो,

तुम हो शक्ति कि जिससे मेरा-
देव-कर्म सब सधता,
तेरे कारण मुझ औढर को-
महादेव जग कहता,

तुम हो मेरे पास तुम्हीं में-
हर पल हूँ मैं रहता,
तेरा प्रेम शीश पर मेरे-
गंगा बनकर बहता,

जहाँ रहो तुम, किन्तु तम्हें ही-
रहता नित अपनाए,
सच कहता हूँ, तुझको खोकर-
शिव भी शव हो जाए,

पुरुष-प्रकृति का मिलन यही है-
सती तुम्हारा मिलना,
यही समझलो परम शान्ति है-
हृदय-कमल का खिलना,

गन्धर्व-व्याह में बँधकर दोनों-
शान्त हृदय कर लेंगे,
चलो, वहीं गन्धर्व-लोक में-
दोनों शीघ्र चलेंगे,

दूर हिमालय की नगरी से-
दक्ष-सुता को लेकर,
मन-ही-मन आसीस शीश पर-
दक्षाणी का लेकर,

शकर जी कैलाश शिखर से-
जाते थे मदमाते,
तरह-तरह के भाव-विभव से-
अपना मन बहलाते,

मोद मनाती सकल दिशाएँ-
मगल ध्वनि लहरायी,
भू-अम्बर से शकर जी की-
जय-जय पड़ी सुनायी,

जय शिव-शकर! भूतनाथ की-
जय-जय हम सब गाएँ,
महादेव के पूजन-अर्चन-
में हम हृदय लगाएँ।।

षष्ठदश सर्ग

दक्ष-सुता से ब्याह रचा के-
डमरू मधुर बजाते,
शकर जी कैलाश पधारे-
मन में मोद मनाते,

पर्वत का कण-कण तक नाचा-
नाच उठा दिग्-अम्बर,
आज चतुर्दिक लहर खुशी की-
छाई थी इस भू पर,

नाच रहा था बसहा गिरि पर-
सर्प हृदय से सट कर,
शिव के सब गण नाच रहे थे-
इस दुनिया से हट कर,

मादकता छाई थी गिरि पर-
सब कुछ मादक लगता,
एक सलोना नव प्रकाश-सा-
जड़-चेतन में जगता,

सती पधारी अपने कर में-
शंकर का कर धर कर,
भूत-प्रेत सब विहँस उठे थे-
उनके चरण पकड़ कर,

नये भाव की मधुर लहर से-
ओत-प्रोत था भूतल,
छिटक रही थी नयी प्रभा की-
ज्योति अलौकिक उज्ज्वल,

एक शिला पर सती बैठकर-
लगी हृदय बहलाने,
शकर जी भी लगे बैठकर-
परम तत्त्व समझाने,

कहा कि यह सम्पूर्ण सृष्टि दो-
नामों से है ज्ञापित,
जड़ है एक, दूसरा चेतन-
तत्त्वों से सचालित,

जड़-चेतन में सृष्टि बँटी है-
पत्थर हो या पानी,
इसके अन्दर पच तत्त्व की-
रहती अमिट निशानी,

क्षिति-जल-पावक-गगन-पवन से-
सब कुछ जग का निर्मित,
इन तत्त्वों के जीवन पर है,
सृष्टि समूची आश्रित,

तत्त्वों से सब बनता तत्त्वों-
में फिर सब मिल जाता,
तत्त्वों की ही परम ज्योति तक-
है दुनिया का नाता,

जो भी जग में दिखता उसका-
अन्त समझना निश्चय,
लेकिन आत्मा जो भीतर है-
एक वही है अक्षय,

उसका कभी न अन्त हुआ है,
और न होगा, जानो,
परम शक्ति बस एक वही है-
उसको ही पहचानो,

जब से सृष्टि हुई है करते-
सब उसका अन्वेषण,
उसकी खातिर साधु-तपस्वी-
तपते रहते क्षण-क्षण,

सच पूछो तो, वही सत्य है-
जीवन का सुखदाता,
इसी सत्य के अन्वेषण में-
जनम-जनम मिट जाता,

इसे खोजना बड़ा सरल है-
और कठिन भी, मानो,
इसे ढूँढ्ना है तो पहले-
अपने को पहचानो,

जिसने जाना आत्म तत्त्व को-
उसने सब कुछ जाना,
क्षण-भगुर जीवन में उसने-
परम तत्त्व पहचाना,

याग-यज्ञ औं पूजन-अर्चन-
तो है वाह्याडम्बर,
सत्य हृदय में छुपा हुआ है-
प्राणों के ही अन्दर,

कर्म-काण्ड पर है आवश्यक-
मन इनसे मुड़ जाता,
लगते-लगते ध्यान सुरति से-
मन अपने जुड़ जाता,

मन है चचल भूत-भविश्यत-
में रहता भरमाया,
वर्त्तमान के निर्मल क्षण को-
जान नहीं यह पाया,

जिसने जाना वर्त्तमान को-
उसका ध्यान लगा है,
सफल वही अन्वेषक निश्चय-
भू पर वही जगा है

परम तत्त्व है एक, उसी को-
ढूँढ रहे सब प्राणी,
किन्तु हृदय निज थाह न पाते-
ऐसे हैं अज्ञानी,

अपने मन को पाना ही है-
विमल सत्य पा जाना,
आत्मा-ज्योति का उद्बोधन है-
अपने को अपनाना,

इसी सत्य के नाम अनेकों-
दुनिया में सब गाते,
कितने प्राणी इसी खोज में-
तड़प-तड़प रह जाते,

इसी सत्य को राम नाम से-
हम सब हैं अपनाते,
एक इसी को साधु-पुरुष सब-
अन्तर से दुहराते,

राम नाम अवलम्ब उसी का-
सत्य जिसे सब कहते,
उसके आश्रय में ही अविचल-
जड़-चेतन सब रहते,

आओ, राम नाम की महिमा-
निर्मल मन से गाएँ,
जगत वन्धु हैं राम भुवन में-
उनको शीश नवाएँ।।

सप्तदश सर्ग

शकर के कैलाश शिखर पर–
होती थी नव क्रीड़ा,
वहाँ नहीं थी किसी तरह की–
लौकिकता की व्रीड़ा,

सब था सात्विक परम अलौकिक-
परम शान्ति का दायक,
जीवन के उत्कर्ष विभव का-
सब था प्रबल सहायक,

साथ सती के कालनाथ ने-
कुछ दिन वहाँ बिताये,
राम नाम की महिमा के सब-
पावन तत्व बताये,

कुछ दिन बाद वहाँ से सब जन-
तीर्थाटन को निकले,
कुम्भज ऋषि के आश्रम में ही-
आए ऋतुकर पहले,

कुम्भज ऋषि भी राम-भक्त थे-
विमल सत्य के ज्ञाता,
परम तत्त्व में लीन सदा थे-
जन-जन के सुखदाता,

पशुपति और सती को पाकर-
कुम्भज ऋषि हर्षाए,
दोनों के ही पद-पद्मों में-
अपना शीश नवाए,

बोले शिव से–त्रेता युग है–
प्रभु अवतार हुआ है,
ज्ञात आपको महिमा सारी–
सब साभर हुआ है,

हम सबको भी राम नाम की–
महिमा कुछ बतलाएँ,
हम भी पाकर परम तत्त्व को–
जीवन सफल बनाएँ,

धूर्जटि बोले–राम नाम की–
महिमा बड़ी अतुल है,
राम नाम से हीन हुए ही–
प्राणी सब व्याकुल है,

जिसने राम तत्त्व को जाना–
वही मात्र है ज्ञाता,
बिना राम के जाने जग में–
चैन न कोई पाता,

कहा आपने सही कि भू पर–
रामचन्द्र हैं आए,
परम तत्त्व के रूप वही हैं–
उनको हम अपनाएँ,

रावण का घन-अन्धकार इस-
भूतल पर है छाया,
इस दानव ने साधु-पुरुष को-
जी भर खूब सताया,

इसके ही संहार हेतु नृप-
दशरथ के घर आकर,
हुए राम अवतरित धरा पर-
मानव का जन पाकर,

दशरथ को संतान नहीं थी-
रहते थे अकुलाए,
पुत्र-यष्टि तप करने को फिर-
श्रृंगी ऋषि को लाए,

यज्ञ हुआ जब पूर्ण नृपति ने-
मनवांछित फल पाया,
कौशिल्या-कैकेयी-सुमित्रा-
ने पायस को खाया,

कौशिल्या के रामचन्द्र थे-
परम पुरुष अवतारी
कैकेयी के भरत लाल थे-
शक्ति समन्वित भारी,

लखन और शत्रुघन, सुमित्रा-
के थे अनुपम बालक,
चारों ही सुत थे दशरथ के-
ज्ञान-भक्ति अवधारक,

कौशिक मुनि ने राम लखन को-
सारी शिक्षा देकर,
मिथिला आए जनक राज के-
पास सभी को लेकर,

चारों का फिर व्याह रचाया-
खुशियाँ मन में छाई,
अवधपुरी के घर-घर में फिर-
ज्योति विपुल लहराई,

किन्तु वहाँ फिर राजतिलक का-
जब शुभ अवसर आया,
पिता-वचन के लिए राम ने-
वन-जीवन अपनाया,

यही समय है, रामचन्द्र हैं-
वन में विचरण करते,
वन में रहते साधु पुरुष के-
जीवन का दुख हरते,

दुष्ट दशानन ने सीता का-
हरण किया है सुनलें,
शीघ्र मरेंगे सभी निशाचर-
प्रभु की महिमा गुन लें,

रामपुरुष अवतारी उनकी-
लीला भू पर न्यारी,
एक वही है अखिल भुवन में-
शक्ति समन्वयकारी,

जिसे सत्य हम कहते वह है-
राम जगत का स्वामी,
वही व्याप्त ब्रह्माण्ड निखिल में-
सब का अन्तर्यामी,

उसको कोई पूरा-पूरा-
अब तक जान न पाया,
उसकी एक किरण की खातिर-
मन रहता भरमाया,

आओ, हम सब उसी राम का-
करलें मन से वन्दन,
कृपा करो हे जगन्नियन्ता-
जय-जय-जय रघुनन्दन।।

अष्टदश सर्ग

कुम्भज ऋषि के आश्रम में कुछ-
काल बिताकर शकर,
चले वहाँ से अपने मन में-
जपते जय-जय रघुवर,

यही समय था प्रभु ने वन का-
जीवन वरण किया था,
लकापति रावण ने सीता-
जी का हरण किया था,

राम विपिन में विरह-विकल थे-
विह्वल मन से होकर,
तड़प रहे नर साधारण-से-
सीता जी को खोकर,

साथ लखन भी व्याकुल होकर-
सिसक रहे थे प्रतिक्षण,
दोनों के अन्तरतर में थी-
विरह-वेदना भीषण,

पूछ रहे थे तरू पल्लव से-
सीता कहो कहाँ है?
कहते-वायु मुझे ले चल-
सीता अभी जहाँ है,

वन के पशु-पक्षी जो मिलते-
उनको गले लगाकर,
कहते जाओ, सीता जी का-
मुझको पता बताकर

नदी-सरोवर के जल से भी-
पता पूछते रुक कर,
मुझे बताओ आज जानकी-
कहाँ गयी है लुक कर?

हिंस्र व्याघ्र जो मिलते उनसे-
विह्वल होकर कहते,
तुम्ही बताओ, तुम तो सब से-
निर्भय वन में रहते,

तुमको किसका भय है? बोलो,
पता मुझे बतलाओ,
कहाँ जानकी गयी बता दो-
तनिक नहीं घबड़ाओ?

जहाँ मैथिली गयी, वहाँ पर-
मुझको तुम पहुँचा दों,
हृदय व्यग्र है, दया करो तुम-
मुझको पता बता दो,

कुटज फूल थे खिले, राम ने-
उनसे भी यह पूछा,
किन्तु कहीं कुछ पता न पाया-
उत्तर था सब छूछा,

रोते-धोते बढे कि आगे-
गृद्ध राज को देखा,
उन्हें देखकर समझ गए, है-
कठिन भाग्य की रेखा,

मरणासन्न जटायू बोला-
मुझको रघुवर देखो,
हाल किया रावण ने कैसा ?
इसको तनिक परेखो,

उसी कुटिल ने सीता जी का-
किया हरण, ले भागा,
स्वय नृपति होकर भी नृप की-
सब मर्यादा त्यागा,

उसी दनुज ने देखो मेरा-
कैसा हाल किया है।
तीक्ष्ण खड्ग से मुझे मार कर-
कष्ट अपार दिया है,

अब तो मुझ में शक्ति नहीं है-
सम्मुख काल खड़ा है,
पता मैथिली का कहने को-
अब तक प्राण अड़ा है,

सुनलो, वह दशग्रीव दनुज तो-
लका में ही भागा,
सीता का यह हरण नहीं, है-
काल उसी का जागा,

जनक-सुता को लका में ही-
उसने कैद किया है,
अपने मरण-हेतु ही उसने-
यह अभिशाप लिया है,

क्षमा करो अब चलता हूँ मैं-
कृपा करो जग त्राता,
तुमको कोई जान न पाया-
जन-जन के सुख-दाता,

कहा राम ने पिता-तुल्य हे-
विहग-केतु! गुण-धारक!
कहो, अचल मैं कर दूँ तन को-
फिर से नभचर-नायक।

कहा जटायू ने-अब मुझको-
कोई चाह नहीं है,
राम स्वय जब मेरे सम्मुख-
अन्तिम समय सही है,

जनम-जनम तक साधु-पुरुष सब-
यत्न अनेकों करते,
किन्तु अन्त में राम राम में-
मुँह से नहीं उचरते,

किन्तु हमारे दृग के आगे-
स्वय राम हैं आए,
तो फिर बोलो, किस वैभव-हित-
प्राण भला अकुलाए,

क्षमा करो हे जगन्निवासन।
जय-जय दु ख विभजन,
ग्रहण करो अब मेरे मन का-
करुणाकर अभिनन्दन,

इतना कह कर वृद्ध जटायु-
स्वर्ग लोक में आया,
रामचन्द्र ने कर्म स्वय ही-
सब सम्पन्न कराया,

तत्पश्चात् राम फिर विह्वल-
मन से पाँव बढाये,
मिला विराध दनुज फिर उसने-
अन्तिम पथ बतलाये,

कहा कि आगे पम्पासर है-
जाओ, हृदय लगाओ,
वानर-पति भी वहीं मिलेंगे-
उनको तुम अपनाओ,

वहीं हृदय की जलन मिटेगी-
सारा काम बनेगा,
रावण का वध करके ही तू-
धरती का यश लेगा,

राम हृदय में लगन लगाए-
आगे बढते आए,
आँखें विरह व्यथित थी उनकी-
युगल अधर कुम्हलाए,

शकर बोले-लीला प्रभु की-
कोई समझ न पाता,
सत्य-ज्योति की दीप्त शिखा पर-
सादर शीश नवाता।।

एकोनविंश सर्ग

शिव ने कहा– सती तुम जानो–
राम जगत के स्वामी,
परम सत्य परमेश्वर हैं वे–
सबके अन्तर्यामी,

जब जब धर्म हुआ है निर्बल-
पाप-मनुज में जागा,
दानव-अत्याचारों से जब-
रोता विश्व अभागा,

साधु-सत जब पीड़ित मन से-
अश्रु बहाते रहते,
असुर-निकायों के सम्मुख जब-
डर से बोल न सकते,

तब-तब प्रभु अवतार धरा पर-
लेते हैं करुणाकर,
ज्योति जगाते सद्‌धर्मो की-
भव का पाप मिटाकर,

आज भुवन में जोर बढ़ा है-
दानव-दल का भीषण,
साधु-जनों पर होता है नित-
रावण का उत्पीड़न,

धरती थर-थर काँप रही है-
सुरपुर है भय-कम्पित,
धर्म विलुप्त हुआ है जग से-
मानवता है खण्डित,

भव के ही उद्धार हेतु फिर–
प्रभु अवतार हुआ है,
निराकार जो ब्रह्म वही तो–
अब साकार हुआ है,

कुम्भज ऋषि के साथ इसी का–
मर्म रहे हम गुनते,
इसी ब्रह्म का यश धरती पर–
साधु–तपस्वी सुनते,

यही ब्रह्म है निखिल भुवन का–
सृष्टि इसी की माया,
यह अनन्त–अनादि–अनश्वर–
सब में यही समाया,

इनकी लीला बड़ी गहन है–
कोई समझ न पाता,
उनको ही कुछ पता चला है–
जिनको राम बताता,

ज्ञानी–विज्ञ वही है जिसको–
राम स्वयं बतलाते,
दृष्टि उसी की खुलती जिसको–
अपना रूप दिखाते,

बिना राम की करुणा के कुछ–
काम न जग में होता,
बिना राम के शव जैसा ही–
जीवन मानव ढोता,

इसी राम का नाम भुवन में–
सत–तपस्वी जपते,
यही शक्ति है जिसके कारण–
डर से कभीन कँपते,

राम–नाम की महिमा गाते–
शकर बढ़ते आए,
अनायास आँखों के आगे–
ज्योति देख भरमाए,

दिव्य ज्योति–सी मूर्त्ति अलौकिक–
पड़ी उन्हें दिखलाई,
स्वय राम थे खड़े सामने–
आभा अद्‌भुत छाई,

हाथ जोड़ कर रामचन्द्र का–
किया तुरत अभिवादन,
कहा–सच्चिदानन्दन! जय हो–
ग्रहण करें प्रभु वन्दन,

कह कर शकर आगे आए–
महाभाव में गाते,
मन–ही–मन आनन्द–कन्द का–
निर्मल यश दुहराते,

सहसा सती हृदय में जागी–
भ्रम की अद्‌भुत रेखा,
लगी सोचने–महादेव हैं–
शिव फिर, यह क्या देखा?

देवों के भी महादेव हैं–
फिर क्यों शीश नवाया?
मात्र नृपति के सुत का कैसे–
इतना मान बढाया?

राम अगर परमेश्वर हैं तब–
विरह व्यथित क्यों होते?
साधारण नर से क्यों भू पर–
विचर रहे हैं रोते?

नहीं–नहीं यह परमेश्वर का–
रूप नहीं हो सकता,
मानव की इस करुण मूर्त्ति में
ईश्वर क्यों खो सकता?

बोली शिव से-महादेव हैं-
शका मन में भारी,
पूछ रही हूँ, यही समझलें-
नारी की लाचारी,

जगत-पूज्य हैं आप, किन्तु क्यों-
नर को नमन किया है?
अवध-नृपति के सुत को बोलें-
क्यों सम्मान दिया है?

शकर बोले-राम स्वय-
परमेश्वर हैं इस जग के,
एक वही परिचालक हैं इस-
जीवन-व्यापी मग के,

वही शक्ति है, जिसके कारण-
शक्ति सभी जन पाते,
उनके अगम-अगाध सुयश को-
सत सदा दुहराते,

अगर नहीं विश्वास तो, जाओ-
स्वय परीक्षा ले लो,
जिस पर हो विश्वास उसी से-
जाकर दीक्षा ले लो,

लेकिन मेरी बात सुनो, मैं-
सच-सच सब बतलाता,
जिसमें है विश्वास नहीं, वह-
उनको जान न पाता,

लाख कहा परसती हृदय की-
शका थी गहराई,
शकर की बातों पर उसको-
प्रीति नहीं हो पाई,

मन की शका ज्वार जलधि-सी-
अविरल बढ्ती आई,
जाकर स्वय परीक्षा लूँगी-
मन में बात समाई,

शकर समझ गए है होनी-
अद्भुत होने वाली,
दूर गगन से उतर पड़ी है-
रजनी की अँधियाली,

राम-नाम जपते अन्तर में-
बैठे तरु के तल में,
सोच रहे थे ज्वार पाप का-
जागा है भूतल में,

जय हे रघुवर दया करो अब–
कृपा करो, दुख हर लो,
पाप–पक में पड़े मनुज को–
अपने सम्मुख कर लो।

विंश सर्ग

सती-हृदय में जाग उठी थी-
शका की चिनगारी,
जाने कैसे शान्ति मिलेगी-
दु ख मिटेगा भारी ?

गहन शोक-चिन्ता से व्याकुल-
आई वन के पथ पर,
चचल मन तो भाग रहा था-
भावों के द्रुत रथ पर,

राम जिधर से आते थे वह-
उसी राह पर आई,
उसके मन में भ्रम की काली-
छाई रही समाई,

सीता का धर वेश पथ पर-
आगे आई सत्वर,
शीश झुकाए खड़ी रही वह-
रघुनन्दन के पथ पर,

उन्हे देख लक्ष्मण के मन में-
कुछ चचलता आई,
'सीता मइया!' कहने को ही-
अपनी आँख उठाई,

इतने में ही कहा राम ने-
सती यहाँ तुम क्यों हो?
किसे ढूँढती हो जगल में-
व्यथित-थकित-सी क्यों हो?

सुनते लगा सती को जैसे-
महा बवण्डर आया,
दृग के आगे राम-रूप का-
व्यापक दर्शन-छाया,

चली वहाँ से, लेकिन यह क्या?
राम-रूप था भूतल,
जिधर दृष्टि पड़ती, लगते थे-
जगते राम समुज्ज्वल,

लता-गुल्म औं तरुवर तक में-
राम दिखाई पड़ते,
'राम-राम' ही शब्द पवन में-
उन्हें सुनाई पड़ते,

लगा कि जैसे राम-रूप ही-
भू पर व्यप्त हुआ है
राम छोड़ कर अन्य दूसरा-
तत्त्व समाप्त हुआ है,

राम-मूर्ति ही उनके चारों-
ओर जगी लगती थी,
मात्र राम की शिखा भुवन में-
अग-जग तक जगती थी,

ब्रह्मा-विष्णु-महेश सभी थे-
करते उनका वन्दन,
शेष-शारदा औं गणपति भी-
करते थे अभिनन्दन,

एक राम को छोड़ दूसरा-
दृग में दृश्य नहीं था,
जहाँ कहीं भी दृष्टि घूमती-
अविकल राम वहीं था,

देख सती थी चकित-थकित औं-
मन से अपने विस्मित,
बोली-शान्त करें, प्रभु! लीला-
चरणों में हूँ आश्रित,

आई शकर पास हृदय को-
अपने खूब सँभाले,
जैसे कोई भीषण आँधी-
अपने मन में पाले,

शकर ने तब पूछा बोलो-
कौन परीक्षा ली है?
परम सत्य के आगे तुमने-
कैसी लीला की है?

सती न बोली टल गयी वह–
मिथ्या बात बनाकर,
"है विश्वास आप पर मुझको"–
इतना ही बतलाकर,

किन्तु ध्यान से शकर जी ने–
देखी लीला सारी,
समझ गए होती है कितनी–
मन से दुर्बल नारी,

किया तुरत सकल्प–सती से–
प्रीति न होगी मन में,
मिल न सकेगी सती मुझे अब–
अपने इस जीवन में,

सहसा लगा काँपने अम्बर–
बादल–दल घिर आया,
बिजली लगी कड़कने, भू पर–
घना अँधेरा छाया,

बिजली की कड़्–कड़् में कोई–
लगा कि जैसे बोला
उसके स्वर के शब्द–शब्द पर–
हृदय सती का डोला,

कहा कि शकर धन्य कि तुमने-
यह सकल्प लिया है,
राम-नाम की महिमा का ही-
नव सकेत दिया है,

भूतनाथ थे रात-दिवस अब-
राम-नाम दुहराते,
किसी विटप के तल में बैठे-
जय-जय रघुवर गाते।।

एकविंश सर्ग

पावन भावों के उद्‌भव से-
मन पवित्र हो जाता,
ऐसे मन में किसी तरह का-
कलुष न रहने पाता,

उत्थित मन ही किए कर्म पर-
पश्चाताप जगाता,
आखों के जल-कण से धोकर-
जीवन सुखद बनाता,

सती हृदय में शका का जो-
भाव अतुल था छाया,
उसे हटा कर नयी प्रभा का-
जीवन था लहराया,

सोच रही थी कैसे मेरे-
मन का ताप मिटेगा?
कर्मों के बन्धन का कैसे-
कलुषित सूत्र कटेगा?

तप-समाधि में शकर जी थे-
अपना हृदय रमाए,
राम-नाम की महिमा की ही-
मन में सुरति जगाए,

सहसा आँख खुली तो देखा-
बैठी सती वहीं है,
उसके आनन पर शका की-
छाया तनिक नहीं है,

किन्तु हृदय विह्वल या मन का-
भाव न डिगने पाए,
जो सकल्प लियाहै उसकी-
डोर न हिलने पाए,

देखा, नभ-पथ से ही सुर-गण-
किन्नर थे सब जाते,
दक्ष-नगर की ओर सभी जन-
जाते थे मुस्काते,

कहा सती ने-आज वहाँ कुछ-
उत्सव-सा है जगता,
कोई समारोह-सा मेरे-
पिता-गेह में लगता,

शकर जी ने कहा कि विधि ने-
उनको मान दिया है,
स्वय प्रजापति का आसन ही-
उन्हें प्रदान किया है,

दक्ष प्रजापति ने जन-जन को-
किया आज आमत्रित,
जाते हैं सब वहीं मनाने-
उत्सव शुभ आयोजित

कहा सती ने आज्ञा दें तो-
मैं भी अब हो आऊँ,
पिता-गेह के उत्सव में ही-
जाकर मन बहलाऊँ,

शकर बोले-बिना बुलाए-
जाना उचित नहीं है,
मुझ से द्रोह रचाने वाले-
अब भी दक्ष वही है,

सब के पास बुलावा भेजा-
हम सब को बिसराया,
ऐसा करके स्वय दक्ष ने-
अपना मान गिराया,

सच है, मात-पिता औं गुरू के-
घर में सब जन जाएँ,
बिना बुलाए भी गुरुजन का-
आशिष सब जन पाएँ,

किन्तु जहाँ है द्रोह हृदय में-
वहाँ न क्षण भर जाना,
बड़ा कठिन है इस दुनिया में-
दुष्टों को अपनाना,

ब्रह्म सभा में हम थे बैठे-
दक्ष वहाँ थे आए,
उठकर नमन नहीं कर पाया-
यही द्रोह अपनाए,

इसीलिए तुमको भी अपने-
घर में नहीं बुलाया,
ऐसे में है ठीक न जाना-
शकर ने समझाया,

किन्तु सती का मन विह्वल था-
बात नहीं सुन पाई,
पिता-गेह में जाने के हित-
रही बहुत अकुलाई,

कहा कि जो हो माता से ही-
जाकर वहाँ मिलूँगी,
नहीं बुलाया, अच्छा ही है-
इतना तो कह दूँगी,

जाने दें प्रभु! मुझे न रोकें-
मन में चाह प्रबल है
लगता जैसे जाग रहा अब-
मन में तीव्र अनल है

सच कहती हूँ आज यहाँ मैं-
कभी नहीं रुक सकती,
किसी विघ्न बाधा के आगे-
आज नहीं झुक सकती,

मन में चाह प्रबल है, अब मैं-
जाकर ही दम लूँगी,
दक्ष पिता है, उनको भी पर-
करनी का फल दूँगी,

शकर के समझाने पर भी-
सती नहीं जब मानी,
भूतनाथ ने कहा कि जाओ-
शक्ति रूप कल्याणी,

वीर भद्र औ अन्य गणों को-
शिव ने पास बुलाया,
सभी गणों को दक्ष-द्रोह का-
पूरा रूप बताया,

कहा कि जाओ उसके सग सब-
उस पर आँच न आए,
उसे तनिक अपमानित कोई-
नहीं वहाँ कर पाए,

उसका ध्यान सदा सब रखना-
विह्वल मत हो जाना,
जहाँ तलक हो दक्ष राज को-
सच्ची राह दिखाना,

सती चली जब दक्ष-नगर को-
शंकर जी अकुलाए,
राम-नाम में लीन रहे वे-
अपना हृदय लगाए।।

द्वि-विंश सर्ग

दक्ष-गेह में सती पधारी-
मन-ही-मन सकुचायी,
किन्तु वहाँ भी रही अकेली-
अपने में अकुलायी,

नहीं किसी ने आकर उससे-
तनिक स्नेह दर्शाया,
उसे देख करअपना मुँह भी,
सबने तुरत फिराया,

दक्ष-रोष से भय-कम्पित सब-
बोल न कुछ भी पाए,
सती पिता के घर में भी थी-
दृग में अश्रु छिपाए,

भीतर भीतर कठिन ज्वाल में-
सती रही अकुलाती,
कैसे हो उपचार हृदय का-
समझ न कुछ भी पाती,

एक अकेली माता ने ही-
जरा उसे दुलराया,
दक्षाणी ने बेटी कह कर-
उसको पास बुलाया,

हाथ पकड़ फिर भीतर घर के-
उसे स्नेह से लाई,
अपनी ममता के आश्रय में-
उसे वहाँ बैठाई,

सभी स्वजन के अंश वहाँ थे-
घर-घर में अनुरंजित,
शंकर और सती का केवल-
वहाँ न था कुछ अभिहित,

इनका कुछ भी अंश नहीं था-
ये थे आज पराए,
इसे देख शंकर के गण तक-
मन-ही-मन अकुलाए,

सती लाज से सिहर उठी थी-
ऐसे यह सब क्या है?
तुरत हृदय में जागी ज्वाला-
उर अन्तर किसका है?

यह अपमान स्वजन का मैं तो-
देख नहीं अब सकती,
मरण श्रेष्ठ है इस गंजन से-
यही सुमति है कहती,

गयी पिता के पास तुरत ही-
उन्हें डाँट कर बोली,
ढोंग यज्ञ का क्यों करते हैं-
यह है एक ठिठोली,

नहीं जानते देवों के भी-
महादेव हैं शकर,
उनका ही अपमान किया है-
अश न उनका रख कर,

यज्ञ न पूरा यह हो सकता-
यह पाखण्ड भरा है,
मिथ्या गर्व आपका इसके-
हर क्रम में गहरा है,

जहाँ गर्व-अभिमान वहाँ पर-
सत्य नहीं टिक सकता,
महाघोर अभिमानी सम्मुख-
धर्म नहीं बिक सकता,

शकर का अपमान न केवल-
सब देवों का जानें,
महादेव की शक्ति अपरिमित-
आप तनिक पहचानें,

इतना कहते सती हृदय से-
योग-अग्नि जग आई
सभी देखते रहे, सती पर-
उसमें तुरत समाई,

सती जली तब महाभयकर-
घोर उपद्रव छाया,
सभी देव औं किन्नर तक का-
हृदय बहुत घबड़ाया,

ध्यान लगा कैलाश-शिखर से-
शकरने सब देखा,
दक्षराज के महापतन का-
अकित था सब लेखा,

शकर के गण दौड़ पडे सब-
अपने ही मतवाले,
दक्षराज के सम्मुख सबने-
यज्ञ नष्ट कर डाले,

हुआ यज्ञ विध्वस सभी ने-
हलचल खूब मचाई,
दक्षराज ने लड़ते लड़ते-
अपने मुँह की खाई,

शकर के गण लगे नाचने-
दक्ष-नगर में आकर,
नहीं दक्ष का कुछ भी था अब-
अपना इस अवनी पर,

सब कुछ था निशेष वहाँ कुछ-
साबित नहीं बचा था,
सभी ओर उस दक्ष-नगर में-
हाहाकार मचा था,

• • •

ब्रह्मा ने जब सुना कि शकर-
द्रोही दक्ष बना है,
उसके मन में महा गर्व का-
पंकिल स्नेह सना है,

तभी उन्होंने दक्षराज का-
आसन छीन लिया था,
उसके व्यापक पाप-कर्म का-
भीषण दण्ड दिया था,

गर्व महा पापों का घेरा-
इसका घात प्रबला है,
इसके चगुल से जो बचता,
भू पर वही सबल है,

इसीलिए है श्रेय कि मन में-
गर्व न तिलभर लाओ,
हरक्षण अपने परमेश्वर में-
मन का राग जगाओ।

त्रिविंश सर्ग

यज्ञ हुआ विध्वस मरा था–
दक्षराज अभिमानी,
उसके भीषण अतुल गर्व की–
थी निःशेष कहानी,

शकर जी भी दक्ष नगर में–
झटपट दौड़े आए,
परम पुनीत सती के शव पर–
झर–झर अश्रु बहाए,

चले वहाँ से शव को लेकर–
अन्तर था अकुलाता,
महामोह में ज्यों वैरागी–
कोई फँसता जाता,

आँखों से आँसू थे गिरते–
मन लगता था सूना,
आज अचानक भार हृदय का–
हो आया था दूना,

भीषण मोह जगा था उनमें–
आज सती को खोकर,
हल्का मन करते जाते थे–
किसी तरह बस रोकर,

बाहों में थी सती, झूलता–
था बस उसका मस्तक
केश राशि सब बिखर रही थी–
ऊपर से अवनी तक,

लगता था ज्यों अभी नींद में-
सोई है कल्याणी,
नाच रही है परम शान्ति की-
मुँह पर अमिट निशानी,

शिव के दोनों लोचन झर झर-
आँसू बहा रहे थे,
लगा कि जैसे सती-बदन को-
नहला वहाँ रहे थे,

शकर शव को लिए भुवन में-
दौड़ रहे थे उन्मन,
देख रहे थे जड़-चेतन सब-
क्या था यह परिवर्त्तन।

भूतनाथ थे स्वय तपस्या-
राग न था कुछ मन में,
वही आज थे महामोह से-
ग्रसित-व्यथित जीवन में,

पागल जैसे दौड़ रहे थे-
जाने क्या अब होगा,
प्रभु की जैसी इच्छा होगी-
वैसा ही सब होगा,

दौड़ रहे थे व्यथित हृदय से-
अपनी सुध-बुध खोए,
किसी तरह से सती बदन को-
दोनों हाथ सँजोए,

इतने में ही सती बदन के-
अग-अग सब कट कर,
गिरने स्वत लगे थे भू पर-
हिमगिरि से कुछ हटकर,

चकित-थकित थे शकर जाने-
ऐसा क्यों हो आया,
तभी वहाँ ब्रह्मा ने आकर-
सब रहस्य समझाया,

जहाँ-जहाँ पर अग गिरे हैं-
उसको सब पहचानो,
यही बावनी शक्ति-पीठि का-
धरती पर है जानो,

परम शक्ति देवी की भू पर-
यहीं विमल जगती है,
शक्ति-पीठ पर सदा प्रतिष्ठित,
रहती स्वय सती है,

सुनकर शकर रुके वहीं पर–
अन्तर शान्त हुआ था,
देवी की महिमा से सारा,
अग–जग व्याप्त हुआ था,

शान्त चित्त से शकर जी–
कैलाश शिखर पर आए,
दृग में आँसू और हृदय में–
भीषण व्यथा छिपाए,

किन्तु यहाँ भी ठहर न पाए–
मन था व्याकुल विह्वल,
जगह–जगह वे ढूँढ रहे थे–
अपनी शक्ति समुज्ज्वल,

सोच रहे थे मन को क्षण भर–
बाँधे, धीर बँधाएँ,
छिन्न हुई जो शक्ति उसे फिर–
कैसे वापस लाएँ?

कोई यत्न न सूझा तब, नव–
भाव हृदय में भर कर,
बैठ गए कैलाश शिखर पर–
अपना डमरू धर कर,

नाम सती का लेकर मन में-
नूतन राग जगाया,
शक्ति-पीठ का सुमिरन करके-
अपना शीश नवाया।।

चतुर्विंश सर्ग

सकल दिशाएँ काँप रही थी–
भूधर डोल रहा था,
मानो हालाहल सागर में–
कोई घोल रहा था,

शकर भी उद्विग्न-हृदय थे-
तिलभर शान्ति नहीं थी,
सूना था सब दृश्य वहाँ अब-
कोई कान्ति नहीं थी,

बड़ी व्यग्रता थी अन्तर में-
भाव न कुछ जगता था,
आज हिमालय का कानन भी-
मरघट-सा लगता था,

सहसा शकर चले वहाँ से-
दिशा-हीन भरमाते,
बिना अन्न-जल लिए चले थे-
पग-पग पाँव बढ़ाते,

चलते-चलते अनायास ही-
विन्ध्य शिखर पर आए,
सोचा यहीं कहीं पर रुककर-
अपना हृदय रमाएँ,

बड़ी जलन थी, बड़ी व्यथा थी-
अन्तर था घबड़ाया
अब तक इस जीवन में ऐसा-
दु ख नहीं था आया,

इतने में ही वहाँ अचानक-
एक विभा-सी छाई,
स्वय सती थी खड़ी सामने-
लिए नई अरुणाई,

थी प्रत्यक्ष सती ही सम्मुख-
देख सभी अकुलाए,
शकर के गण लगे काँपने-
बालक से भरमाए,

शम्भु सती को देख तुरत ही-
लगे नाचने गाने,
अन्तरतर में मोद अतुल भर-
लगे हृदय हर्षाने,

मिटा सकल सताप, अभागी-
जड़ता शेष हुई थी,
परम शान्ति की दीप्ति हृदय में-
अय अनिमेष हुई थी,

खोकर जिसको मन की पीड़ा-
अपरम्पार बढ़ी थी,
वही हृदय की मूर्त रागिनी-
सम्मुख आज खड़ी थी,

शकर ने झट आँख मूँद कर-
मन में मूर्त्ति उतारी,
जगी न कोई नयी एषणा-
मिटी कामना सारी,

आँख खोल कर फिर देखा तो-
सती रही मुस्काती,
वैसे ही ज्यों सूर्योदय में-
नयी विभा लहराती,

पुलकित तन शकर थे क्षण-क्षण-
कैसी मुग्ध घड़ी हैं,
सम्मुख उनकी विमल प्रेयसी-
अविचल आज खड़ी है,

सती निकट शकर के आई-
अपना हाथ बढाए,
मानो, सुरभि स्वय ही बढ़कर-
कचन को अपनाए,

तुरत शम्भु ने भी अपने को-
भ्रम से बाहर लाया,
हाथ बढाकर सती प्रिया को-
अपने गले लगाया,

मिली सती शकर में, जग में-
नूतन शक्ति समायी,
बनकर स्वय अर्द्धनारीश्वर-
शिव ने कीर्त्ति कमायी,

शकर थे निश्चिन्त हृदय में-
नव अनुराग जगा था,
सती ध्यान में खोकर खुद को-
देखा प्रेम पगा था,

हुई राग में लीन रागिनी-
भाव-भावना जागे,
शक्ति-भक्ति के अनुरजित क्षण-
जगे काम के आगे,

लोक-रजना के भावों में-
अपना राग जगाकर,
शकर जी कैलाश पधारे-
डमरू पुन बजाकर,

मरघट-सा जो शैल-शिखर था-
उसमें जीवन आया,
शकर के ही साथ गणों में-
नव प्रकाश लहराया,

पचविंश सर्ग

एक दिवस ब्रह्मा के सम्मुख-
विह्वल सुर-गण आए,
वन्दन करके बड़े प्रेम से-
अपने वचन सुनाए,

देवासुर-सग्राम यहाँ पर-
अब है होने वाला,
सुलग रही है दोनों दल के-
मन में भीषण ज्वाला,

सब कहते हैं शकर-सुत ही-
देवों का है रक्षक,
यही बनेगा सेनापति अब-
सुर-गण का अभिरक्षक,

शकर का पर, विधुर हृदय तो-
नहीं कहीं पर थमता,
आज अर्द्धनारीश्वर बनकर-
भूतल पर है रमता,

ऐसे में हम सुर-गण का अब-
क्या होगा बतलाएँ?
कोई नया उपाय बताकर-
सब रहस्य सुलझाएँ,

विधि ने कहा-भविष्यत् देखो-
आएगी उजियाली,
सुर-गण के आनन पर होगी-
ऊषा जैसी लाली,

तुम्हे पता है सती शिवा है-
शकर की ही अगी,
शकर के ही प्रेम रग में-
बनी विमल मातगी,

मरते क्षण भी स्वय सती ने-
शिव में हृदय लगाकर,
शिव से ही वरदान लिया था-
अपना प्राण गँवाकर,

आज हिमालय-सुता वही है,
भूतल पर कल्याणी,
सती स्वत ही पुन जनम कर-
भू पर बनी भवानी,

  

पार्वती है यही भुवन में-
शिव में हृदय रमाए,
शकर की सुधि में ही वह है-
अपना ध्यान लगाए,

शिव से ही तो पार्वती का-
होगा व्याह भुवल में,
नव अनुराग जगा है देखो-
दोनों के ही मन में,

उनका ही सुत सेनापति जब-
होगा सब सुर-गण का,
तभी समझलो, ताप मिटेगा-
देव-गणों के मन का,

सुनकर सुर-गण चले वहाँ से-
शिव की महिमा गाते,
जय-जय शकर! महादेव जय!
मन-ही-मन दुहराते,

आशुतोष के शुभ आराधन-
की ही ज्योति जगाए,
अपने-अपने लोक पधारे-
सुर-गण ध्यान लगाए,

••

आओ, अन्तर मन से करलें-
शकर का अभिनन्दन,
करते हम सब रहे निरन्तर-
उनका पूजन-वन्दन।।

समाप्त